श्रीवीतरागाय नमः

सरल नित्यपाठ संग्रह

—: संग्रहकर्त्ता :—

पं० कस्तूरचन्दजी छावड़ा, "विशारद"

(प्रकाशक)

छोटेलाल परमानन्द जैन

देवरी (सागर) C. P.

प्रथम संस्करण } २४५० { न्योछावर ।।।) मात्र

प्रकाशकीय निवेदन।

वन्धुवो ! आज आपको हम एक ऐसी चीज भेंट कर रहे हैं जो प्रतिदिन काममें आनेवाली, है परदेशमें चले जाइये वस इस एक पुस्तकको रख लेनेसे ३५ तरहके स्तोत्र, आदिका काम इससे निकल आवेगा। अभीतक जितने भी गुटका, संग्रह आदि छपें हैं किसीका कागज खराव है, किसीके अक्षर छोटे हैं, तो किसीका मूल्य अधिक है यह शिकायतें वरावर रहा करती थी . इन सव वातोंको ध्यानमें रखकर हमने अच्छे चिकने मोटे कागजपर वड़े २ अक्षरोंमें शुद्धताके साथ पं० कस्तूरचन्दजी छावड़ा द्वारा इस उपयोगी **"सरल नित्यपाठ संग्रह"** संग्रह छपवाया है अभी तक इस कार्यालयसे वहुत पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं तथा भविष्यमें अन्यान्य उपयोगी ग्रन्थ प्रकाशित करनेकी योजना की जायगी।

॥) जमा कराके ग्रन्थमाला ग्राहक हो जानेपर तमाम ग्रन्थ और पुस्तकें पौनी कीमतमें वरावर मिलती रहेंगीं। आज ही ग्राहक श्रेणीमें नाम लिखाइये।

निवेदक—

श्रुतपंचमी जष्ठ शुक्ला ५ सं० १९८१ सागर	सिंघई छोटेलाल परमानन्द मालिक—जैनग्रंथ कार्यालय, देवरी (सागर)

विषय सूची।

सरल नित्यपाठ संग्रह

एक व्रती श्रावक नित्य पाठ कर रहा है।

ॐ

सरलजैननित्यपाठसंग्रह।

नमस्कार मंत्रादि।

गाथा।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइ-रीयाणं। णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व-साहूणं ॥१॥

चत्तारि मंगलं—अरहंत मंगलं। सिद्ध मंगलं। साहु मंगलं। केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ॥१॥ चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंत लोगु-त्तमा। सिद्ध लोगुत्तमा। साहु लोगुत्तमा। केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ॥२॥ चत्तारि सरणं पव्वज्जामि अरहंत सरणं पव्वज्जामि। सिद्ध सरणं पव्वज्जामि। साहु सरणं पव्वज्जामि। केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि ॥ ओं झौं झौं स्वाहा ॥

वर्तमान चौबीस तीर्थंकरोंके नाम।

कवित्त ३१ मात्रा।

ऋषभ अजित संभव अभिनंदन, सुमति पद्म सुपास जिनचंद। पुहपदंत शीतल श्रेयांस प्रभु, वासुपूज्य प्रभु विमल सुछंद ॥ स्वामि अनंत धर्म प्रभु शांति सु, कुंथु अरह जिन मल्लि अनंद। मुनिसुव्रत नमि नेमि पास, वीरेश सकल वंदौं सुखकंद ॥

श्रीऋषभः १ अजितः २ संभवः ३ अभिनंदनः ४ सुमतिः ५ पद्मप्रभः ६ सुपार्श्वः ७ चंद्रप्रभः ८ पुष्पदंतः ९ शीतलः १० श्रेयांसः ११ वासुपूज्यः १२ विमलः १३ अनंतः १४ धर्मः १५ शांतिः १६ कुंथुः १७ अरः मल्लिः १९ मुनिसुव्रतः २० नमिः २१ नेमिः २२ पार्श्वनाथः २३ महावीरः २४ इति वर्तमानकाल संबंधि चतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमो नमः ॥

इस प्रकार बोलकर सष्टांग नमस्कार करना चाहिये। नमस्कारके पश्चात् पूजनके लिये अक्षित चढ़ाना हों, तो नीचे लिखे पद्य तथा मंत्र पढ़े।

गीता छंद ।

यह भवसमुद्रअपार तारण, के निमित्त सुविधि ठई । अति दृढ परमपावन जथारथ भक्ति वर नौका सही ॥ उज्जल अखंडित सालि तंदुल, पुंज धरि त्रयगुण जचूं । अरहंत श्रुत सिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ १ ॥

दोहा ।

तंदुल सालि सुगंध अति, परम अखंडित वीन ।
जासौं पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥

पुष्पोंसे पूजन करना हो तो नीचे लिखा पद्य पढ़कर चढ़ावे ।

जे विनयवंत सुभव्य-उरअंबुज-प्रकाशन भान हैं । जे एकमुखचारित्र भाषत, त्रिजगमाहि प्रधान हैं । लहि कुंदकमलादिक पहुप, भव भव कुवेदनसों बचूं । अरहंत श्रुतसिद्धान्त गुरुनिरग्रंथ नित पूजा रचूं ॥२॥

दोहा ।

विविधभांति परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन ।
तासौं पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय

पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

किसीको लौंग, बादाम, इलायची या कोई प्रासुक फल चढाना हो तो नीचे लिखे पद्य और मंत्र पढ़कर चढ़ावे ॥

लोचन सुरसना घ्राण उर, उत्साहके करतार हैं।
मोपै न उपमा जाय बरणी, सकल फल गुण सार हैं।
सो फल चढावत अर्थ पूरन, सकल अमृतरस सचूं। अरहंत श्रुत०॥३॥

दोहा।

जे प्रधान फल फलविषैं, पंचकरण—रसलीन।
जासौं पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥३॥
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥३॥

किसीको अर्घ चढ़ाना हो, तो नीचे लिखे पद्य व मंत्र बोले।

जल परम उज्जवल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूं। वर धूप निर्मल फल विविध, बहु जनमके पातक हरूं ॥ इह भांति अर्घ चढ़ाय नित भवि, करत शिवपंकति मचूं। अरहंत श्रुत-सिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ ४ ॥

दोहा।

वसुविधि अर्घ संजोयके, अति उछाह मन कीन।

जासौं पूजौं परम पद, देव शास्त्र गुरु तोन ॥४॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

इति नमस्कारमंत्रादि ॥१॥

(२)

दर्शन ।

छप्पय ।

देखे श्रीजिनराज, आज सब विघन-विलाये ।
देखे श्रीजिनराज, आज सब मंगल आये ॥
देखे श्रीजिनराज, काज करना कछु नाहीं ।
देखे श्रीजिनराज, हौंस पूरी मनमाहीं ॥
तुमदेखे श्रीजिनराजपद, भोजलअंजुलिजलभया
चिंतामनिपारसकल्पतरु, मोहसबनिसोंउठिगया

२

देखे श्रीजिनराज, भाज अघ जाहिं दिसंतर ।
देखे श्रीजिनराज, काज सब होंइ निरंतर ॥
देखे श्रीजिनराज, राज मनवांछित करिये ।
देखे श्रीजिनराज, नाथ दुख कबहु न भरिये ॥

तुम देखे श्रीजिनराजपद, रोम रोम सुख पाइए
धनिआजदिवसधनिअबघरी, माथनाथकौंनाइए

३—४

धन्य धन्य जिनधर्म, कर्मकौं छिनमैं तोरै ।
धन्य धन्य जिनधर्म परमपदसौं हित जोरै ॥
धन्य धन्य जिनधर्म, भर्मको मूल मिटावै ।
धन्य धन्य जिनधर्म, शर्मकी राह बतावै ॥
जगधन्यधन्यजिनधर्म यह, सोपरगटतुमनैं किया
भवखेत पाप-तप तपतकौं, मेघरूप है सुख दिया
तब विलंब नहिं कियो, चीर द्रौपदिको बाढ्यो ।
तब बिलंब नहिं कियो, सेठ सिंहासन चाढ्यो ॥
तब बिलम्ब नहिं कियो, सियातैं पावक टार्‌यो ।
तब बिलंब नहिं कियो, नीर मातंग उबार्‌यो ॥
इहविधि अनेक दुख भगतके, चूर दूर किये सुख अवनि। प्रभु मोहिं दुःख नासनि विषैं अब विलम्ब कारन कवन ॥

५

कियो भौनतैं गौन, मिटी आरति संसारी ।

राह आन तुम ध्यान, फिकर भाजी दुखकारी ॥
देखे श्री जिनराज, पापमिथ्यात विलायो ।
पूजा श्रुति वहु भगति, करत सम्यकगुन आयो
इस असार संसारमैं, कल्पवृक्ष तुम दरस है ।
प्रभु मोहि देहु भौ भौविषै, यह वांछा मन सरसहै ॥

दर्शन स्तुति ।

छप्पय ।

तुव जिनिंद दिट्ठियौ, आज पातक सव भज्जे ।
तुव जिनिंद दिट्ठियौ, आज वैरी सव लज्जे ॥
तुव जिनिंद दिट्ठियौ, आज मैं सरवस पायौ ।
तुव जिनिंद दिट्ठियौ, आज चिंतामणि आयो ॥
जै जै जिनिंद त्रिभुवन तिलक, आज काज मेरो सर्‍यो । कर जोरि भविक विनती करत, आज सकल भव दुख टर्‍यौ ॥ १ ॥
तुव जिनिंद मम देव, सेवमैं तुमरी करिहौं ।
तुव जिनिंद मम देव, नाम तुम हिरदै धरिहौं ॥
तुव जिनिंद मम देव, तुही साहिव मैं वन्दा ।
तुव जिनिंद मम देव, मही कुमुदनि तुव चंदा ॥

जै जै जिनिंद भवि कमल रवि, मेरो दुःख नि-
वारिकै । लीजै निकाल भव जालतैं, अपनो भक्त
विचारिकै ॥ २ ॥

स्वयंभू स्तोत्र ।

चौपाई ।

राज विषै जुगलन सुख किया । राज त्याग
भवि सिवपद दिया ॥ स्वयंबोध स्वंभू भगवान
वन्दौं आदिनाथ गुनखान ॥१॥ इन्द्र छीरसागर
जल लाय । मेरुन्हुलाए गाय वजाय ॥ मदन
विनासक सुख करतार । वन्दौं अजित अजित
पदधार ॥ २ ॥ सकल ध्यान करि करम विनास ।
घाति अघाति सकल दुखरास ॥ लह्यो मुक्ति-
पद सुख अविकार । वन्दौं सम्भव भवदुख
टार ॥ ३ ॥ माता पच्छिम रयनमझार ।
सुपने सोलै देखे सार ॥ भूप पूछि फल सुन हर
खाय । वन्दौं अभिनन्दन मन लाय ॥ ४ ॥
सव कुवादवादी सिरदार । जीते स्यादवाद
धुनि धारि ॥ जैनधरमपरकासक स्वाम । सुमति

देव पद करौं प्रनाम ॥ ५ ॥ गरभ अगाऊ धन-
पति आय। करी नगर सोभा अधिकाय॥ बरखे
रतन पंचदश मास। नमों पद्म प्रभु सुखकी
रास ॥ ६ ॥ इन्द्र फनिंद्र नरिन्द्र त्रिकाल। वानी
सुनि २ होहिं खुस्याल ॥ वारह सभा ज्ञानदा-
तार। नमों सुपारसनाथ निहार ॥ ७ ॥ सुगुन
छियालिस हैं तुम माहिं। दोप अठारह कोऊ
नाहिं ॥ मोह महातमनाशक दीप। नमों चंद
प्रभु राख समीप ॥ ८ ॥ वारह विध तप करम
विनास। तेरह भेद चरित परकास॥ निज अनि
च्छ भवि इच्छकदान। वन्दों पहुपदन्त मन
आन ॥ ९ ॥ भवि सुखदाय सुरगतैं आय।
दसविध धर्म कह्यो जिनराय ॥ आप समान
सवनि सुखदेह। वन्दों सीतल धरि मन नेह ॥
१० ॥ समता सुधाकोपविपनाश। द्वादशांगवानी
परकास ॥ चारि संघ आनन्ददातार। नमों
श्रिअंस जिनेसुर सार ॥११॥ रतनत्रय सिरमुकुट
विशाल। शोभै कंठ सुगुन मनिमाल ॥ मुकत-

नारि-भरता भगवान। वासु, पूज्य वन्दौं धरि ध्यान ॥ १२ ॥ परम समाधि सरूप जिनेस। ज्ञानी ध्यानी हितउपदेश ॥ करम नास शिवसुख विलसंत। वन्दौं विमलनाथ भगवन्त ॥ १३ ॥ अन्तर वाहर परिग्रह डार। परम दिगम्बर व्रत कौं धार ॥ सरव जीव हित राह दिखाय। नमौं अनन्त वचन मन काय ॥ १४ ॥ सात तत्त्व पंचासति काय। अरथ नवों छ दरव वहु भाय ॥ लोक अलोक सकल परकास। वन्दौं धर्मनाथ अघनास ॥ १५ ॥ पंचमचक्रवर्ति निधि भोग। कामदेव द्वादसम मनोग ॥ सांति करन सोलम जिनराय। शांतिनाथ वन्दौं हरषाय ॥१६॥ बहु थुति करैं हरष नहिं होय। निंदैं दोष गहैं नहिं सोय ॥ सीलवान परब्रह्म स्वरुप। वंदौ कुंथुनाथ शिव भूप ॥ १७ ॥ वारह गन पूजै सुखदाय। थुति वंदना करैं अधिकाय ॥ जाको निज थुति कबहुं न होय। वन्दौं अर जिनवरपद दोय ॥ १८ ॥ परभौ रत्नत्रय अनुराग। इस भौ व्याह

समय वैराग ॥ बालब्रह्म पूरन ब्रत धार। बन्दौं मल्लिनाथ जितमार ॥ १९ ॥ विन उपदेश स्वयं वैराग थुति लौकांत करैं पग लाग ॥ "नमःसिद्ध कहि सब ब्रत लेहिं, बन्दौं मुनिसुब्रत ब्रत देहिं ॥ २० ॥ श्रावक विद्यावन्त निहार। भगति भाव सो दियो अहार ॥ वरखे रतनराशि ततकाल। बन्दौं नमि प्रभु दीनदयाल ॥ २१ ॥ सब जीवन की वन्दी छोर। राग दोष दोउ बन्धन तोर ॥ रजमति तजि शिवतियसों मिले। नेमिनाथ बन्दौं सुखनिले ।२२। दैत्य कियो उपसर्ग अपार। ध्यान देखि आयो फनिधार ॥ गयो कमठ शठ मुख करि श्याम। नमौं मेरुसम पारस स्वाम ॥ २३ ॥ भवसागरतैं जीव अपार। धरमपोत मैं धरे निहार ॥ डूबत काढ़े दया विचार। वर्धमान बंदौं बहुबार ॥ २४ ॥

दोहा

चौवीसौ पदकमलजुग, बंदौ मन वच काय।
द्यानत पढ़ै सुनैं सदा, सो प्रभु क्यों न सहाय ॥

इति स्वयंभूस्तोत्र ॥

दौलतराम कृत स्तुति ।

सकल ज्ञेयज्ञायक तदपि, निजानन्द रसलीन ।
सो जिनेंद्र जयवन्त नित, अरिरजरहसि विहीन ॥

पद्धरी छन्द

जय वीतराग विज्ञानपूर । जय मोहतिमिरको हरन सूर ॥ जय ज्ञान अनन्तानन्तधार । दृगसुख वीरजमंडित अपार ॥ २ ॥ जय परमशांत मुद्रा-समेत । भविजनको निजअनुभूति हेत ॥ भवि भागनवश जोगेवशाय । तुमधुनि ह्वै सुनि विभ्रम नशाय ॥ ३ ॥ तुमगुण चिन्तत निजपर विवेक प्रगटै, विघटै आपद अनेक ॥ तुम जगभूषण दूषणवियुक्त । सब महिमायुक्त विकल्पमुक्त ॥ अविरुद्ध शुद्ध चेतनस्वरूप । परमात्म परम पावन अनूप ॥ शुभ अशुभविभावअभावकीन । स्वाभाविकपरिणतिमयअछीन ॥ ५ ॥ अष्टाद-शदोषविमुक्त धीर । सुचतुष्टयमयराजत गंभीर ॥ मुनि गणधरादि सेवत महंत । नवकेवललब्धि-मा धरंत ॥६॥ तुम शासन सेय अमेय जीव ।

शिव गये जाहिं जैहैं सदीव ॥ भवसागरमें दुख-
छार वारि। तारनको और न आप टारि ॥७॥
यह लखि निज दुखगदहरणकाज। तुमही नि-
मित्तकारण इलाज ॥ जाने, तातैं मैं शरण
आय। उचरों निज दुख जो चिर लहाय ॥८॥
मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप। अपनाये वि-
धिफल पुण्यपाप ॥ निजको परकौ करता पि-
छान। परमैं अनिष्टता इष्ट ठान ॥ ६ ॥ आकु-
लित भयो अज्ञान धारि। ज्यों मृग मृगतृष्णा
जानि वारि ॥ तनपरणतिमें आपो चितार।
कवहूं न अनुभयो स्वपदसार ॥ १० ॥ तुमको
विन जाने जो कलेश। पाये सो तुम जानतजि-
नेश ॥ पशु नारक नर सुर गतिमंझार। भव
धर धर मरयो अनंतवार ॥ ११ ॥ अव काल-
लब्धिवलतैं दयाल। तुम दर्शन पाय भयो खु-
शाल ॥ मन शांत भयो मिटि सकलद्वंद। चा-
ख्यो स्वात्मरस दुखनिकंद ॥ १२ ॥ तातैं अव
ऐसी करहु नाथ। विछुरै न कभी तुम चरण

साथ ॥ तुम गुणगणको नहिं छेव देव। जग तारनको तुअ विरद एव ॥ १३ ॥ आतमके अहित विषय कषाय। इनमें मेरी परिणति न जाय ॥ मैं। रहूं आपमें आप लीन। सो करो होहुं ज्यों निजअधीन ॥ १४ ॥ मेरे न चाह कछु और ईश। रत्नत्रयनिधि दीजे मुनीश ॥ मुझ कारजके कारन सु आप। शिव करहु, हरहु मम मोहताप ॥ १५ ॥ शशि शांतकरन तपहरन हेत। स्वयमेव तथा तुम कुशल देत ॥ पीवत पियूष ज्यों रोग जाय। त्यों तुम अनुभवतैं भव नसाय ॥ १६ ॥ त्रिभुवन तिहुंकालमंझार कोय। नहिं तुमविननिज सुखदायहोय ॥ मोउर यह निश्चय भयो आज। दुखजलधिउतारन तुम जिहाज ॥ १७ ॥

तुम गुणगणमणि गणपती, गणत न पावहिं पार। 'दौल' स्वल्पमति किमि कहै, नमूं त्रियोगसंभार ॥

इति दौलतरामकृत स्तुति ॥

बुधजनकृत स्तुति ।

प्रभु पतितपावन मैं अपावन, चरन आयो सरनजो । यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरनजी ॥ तुम ना पिछान्या आन मान्या देव विविधप्रकारजो । या बुद्धिसेती निज न जाण्या भ्रम गिण्या हितकारजी ॥ १ ॥ भवविकटवनमें करम वैरो, ज्ञानधर मेरो हरयो । तब इष्ट भूल्यो भृष्ट होय, अनिष्टगति धरतो फिरयो ॥ धन घड़ी यो धन दिवस यो ही, धन जनम मेरो भयो । अब भाग मेरो उदय आयो, दरश प्रभुको लखलयो ॥ २ ॥ छबि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नासापै धरैं । वसु प्रातिहाय अनंत गुणजुत, कोटि रवि छविको हरैं ॥ मिट गयो तिमिर मिथ्यात मेरो, उदयरवि आतम भयो । मो उर हरख ऐसो भयो मनुरंक चिंतामणि लयो ॥३॥ मैं हाथ जोड़ नवाय मस्तक बीनऊं तुअ चरनजी । सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहु तारन तरनजी ॥ जाचूं नहीं सुर-

वास पुनि नरराज परिजन साथजी। 'वुध' जाचहू तुम्र भक्ति भवभव, दोजिये शिवनाथजी ॥

भूधरकृत स्तुति।

हरिगीतिका।

पुलकंत नयन चकोर पच्यो, हंसत उर इंदीवरो। दुर्वुद्धि चकवी विलख विछुरयो, निविड़ मिथ्यातम हरो॥ आनंद अंवुज उमग उछरयो, अखिल आतम निरद । जिनवदन पूरनचंद्र निरखत, सकल मनवांछित फले ॥१॥ मम आज आतम भयो पावन, आज विघन विनाशिया। संसारसागर नीर निवट्यो अखिल तत्त्व प्रकाशिया॥ अव भई कमला किंकरी मम, उभय भव निर्मल ठये। दुखजरयो दुर्गति वास निवरयो, आज नव मंगल भये ॥ २ ॥ मनहरन मूरति हेरि प्रभू को, कौन उपमा लाइये। मम सकल तनके रोम हुलसे, हर्ष और न पाइये॥ कल्याणकाल प्रतच्छ प्रभुको लखे, जो सुर नर घने। तिह समयकी आनंद महिमा,

कहत क्यों मुखसों बने ॥ ३ ॥ भर नयन निरखे नाथ तुमको, और वांछा ना रही । मन उर मनोरथ भये पूरन, रंक मानो निधि लही ॥ अब होउ भव भव भक्ति तुम्हरी, कृपा ऐसी कीजिये । कर जोर 'भूधरदास' विनवै, यही वर मोहि दीजिये ॥ ४ ॥

भूधरकृत दूसरी स्तुति ।

अहो ! जगत्गुरु एक, सुनियो अरज हमारी । तुम हो दीनदयाल; मैं दुखिया संसारी ॥ १ ॥ इस भव वनमें वादि, काल अनादि गमायो । भ्रमत चहूंगति माहिं, सुख नहिं दुख वहु पायो ॥ २ ॥ कर्म महारिपु जोर, एक न कान करै जी । मन मान्यां दुख देहिं काहुंसों न डरै जी ॥ ३ ॥ कबहुं इतर निगोद, कबहुं नर्क दिखावै । सुरनर पशुगतिमाहिं; बहुविधि नाच नचावै ॥ ४ ॥ प्रभु ! इनके परसंग; भव भवमाहिं बुरे जी । जे दुख देखे देव ! तुमसों नाहीं दुरे जी ॥ ५ ॥ एक जनमकी बात, कहि न

सकों सुनि स्वामी ! । तुम अनंत परजाय, जानत अन्तरयामी ॥ ६ ॥ मैं तो एक अनाथ, ये मिलि दुष्ट घनेरे । कियो बहुत बेहाल, सुनियो साहिब मेरे ॥७॥ ज्ञान महानिधि लूटि रंक निबल करि डारचो । इनहीं तुम मुझ मांहिं, हे जिन ! अन्तर पारचो ॥ ८ ॥ पाप पुन्यकी दोइ, पायनि बेरी डारी तन कारागृह मांहिं मोहि दिये दुःख भारी ॥ ९ ॥ इनको नेक विगार, मैं कछु नाहिं कियो जी । बिनकारन जग बंद्य ! बहुविधि बैर लियो जी ॥ १० ॥ अब आयो तुम पास, सुनि जिन ! सुजस तिहारो । नीति निपुन महराज ! कीजे न्याव हमारो ॥ ११ ॥ दुष्टन देहु निकार, साधुनको रख लीजै । विनवै भूधरदास, हे प्रभु ! ढील न कीजै ॥ १२ ॥

भूधरकृत गुरुस्तुति ।

वंदौं दिगंबर गुरुचरन जग, तरन तारन जान ।
जे भरम भारी रोगको, हैं राजवैद्य महान ॥ १ ॥
जिनके अनुग्रह बिन कभी, नहिं कटै कर्मजंजीर

ते साधु मेरे उर बसहु, मेरी हरहु पातक पीर ।
यह तन अपावन अथिर है, संसार सकल असार।
ये भोग विष पकवानसे, यह भांति शोच विचार
तपविरचि श्रीमुनि वनवसेसब छाड़ि परिगहभीर
ते साधु मेरे मन वसो मेरो हरहु पातक पीर ।२।
जे काच कंचन सम गिनहि,अरि मित्र एक सरूप
निंदा बड़ाई सारिखो, बनखंड शहर अनूप ॥
सुखदुःख जीवनमरनमें, नहि खुशी नहि दिलगीर
ते साधु मेरे उरवसो, मेरी हरहु पातक पीर ।३।
जे बाह्य परवत वनबसैं, गिरिगुफा महल मनोग ।
सिलसेज, समतासहचरी,शशिकिरनदीपक जोग ॥
मृगमित्र, भोजन तप मई, विज्ञान निरमलनीर ।
ते साधु मेरे मन वसो, मेरी हरहु पातक पीर ।४।
सूखहिं सरोवर जलभरे, सूखहिं तरंगिनि-तोय ।
बाटहि बटोही ना चलैं, जँह घाम गरमी होय ॥
तिहंकालमुनिवरतपतपहिं,गिरिशिखरठाढे धीर ।
ते साधु मेरे उर वसो, मेरी हरहु पातक पीर ।५।
घनघोर गरजहिं घनघटा, जलपरहिंपावसकाल ।

चहुंओर चमकइ बीजुरी, अति चलै सीरीव्याल ॥
तरुहेठ तिष्ठहिं तब जती, एकांत अचलशरीर ।
ते साधु मेरे मन वसो, मेरी हरहु पातक पीर ।६।
जब शीतमास तुषारसों, दाहै सकल बनराय ।
जब जमै पानी पोखरां, थरहरै सबकी काय ॥
तब नगन निवसैं,चौहटै, अथवा नदीके तीर ।
ते साधु मेरे उर वसो, मेरी हरहु पातक पीर ।७।
करजोर 'भूधर' बीनवै, कबमिलहिं वे मुनिराज ।
यह आश मनकी कब फलौ,मम सरहिं सगरेकाज
संसार बिषम विदेशमें, जे विना कारण वीर ।
ते साधु मेरे उर बसो, मेरी हरहु पातक पीर ॥८॥

इति भूधरकृत गुरुस्तुति ॥

अथ भूधरकृत दूसरी गुरुस्तुति ।

राग भरतरी दोहा ।

ते गुरु मेरे मन बसो, जे भवजलधि जहाज
आप तिरैं पर तार हीं, ऐसे श्रीऋषिराज ॥
ते गुरु० ॥ १ ॥ मोह महारिपु जानिकै छांड्यो
सब घरबार । होय दिगम्बर वन बसे, आतम

शुद्ध विचार ॥ ते गुरु० ॥ २ ॥ रोग उरग-बिल वपु गिरायों, भोग भुजङ्ग समांन । कदली तरु संसार है, त्याग्यो सब यह जान ॥ ते गुरु० ॥३॥ रतनत्रय निधि उर धरैं, अरु निरग्रन्थ त्रिकाल। मार्यो कामखवीसको, स्वामी परम दयाल ॥ ते गुरु० ॥ ४ ॥ पंच महाव्रत आदरैं, पांचों सुमति समेत । तीन गुपति पालैं सदा, अजर अमर पद हेत ॥ ते गुरु०॥५॥ धर्म धरैं दशलच्छ-णी भावैं भावनासार । सहैं परीषह बीस द्वै, चा-रित-रतन-भण्डार ॥ ते गुरु० ॥६॥ जेठ तपै रवि आकरो सूखैं सर वर नीर शैल-शिखर मुनि तप तपैं, दाझैं नगन शरीर ॥ ते गुरु०॥ ७ ॥ पावस रैन डरावनी, बरसै जल, धर-धार । तरुतल निवसैं साहसी, बाजै झंझावार ॥ ते गुरु०॥८॥ शीत पड़ै कपि-मद गले, दाहै सब वनराय । ताल तरं-गनिके तटैं, ठाड़े ध्यान लगाय ॥ ते गुरु० ॥९॥ इह विधि दुद्धर तप तपैं, तीनों कालमंझार । लागे सहज सरूपमें, तनसों ममत निवार ॥ ते

गुरु० ॥ १० ॥ पूरव भोग न चिन्तवैं, आगम वांछैं नाहिं । चहुंगतिके दुखसों डरैं, सुरति लगी शिवमाहिं ॥ ते गुरु० ॥ ११ ॥ रङ्गमहलमें पौढ़ते, कोमल सेज बिछाय । ते पच्छिम निशि भूमिमें सवैं संवरि काय ॥ ते गुरु० ॥ १२ ॥ गज चढ़ि चलते गरबसों, सेना सजि चतुरङ्ग । निरखि निरखि पगते धरैं, पालैं करुणा अङ्ग ॥ तै गुरु० ॥ १३ ॥ वे गुरु चरण जहां धरैं, जगमें तीरथ जेह । सो रज मम मस्तक चढ़ो, भूधर मांगै एह ॥ ते गुरु० ॥ १४ ॥

इति भूधरकृत दूसरी गुरुस्तुति ॥

नाथूरामप्रेमीकृत सरस्वतीस्तवन ।

शिखरिणी ।

जगन्माता ख्याता जिनवरमुखांभोजउदिता ।
भवानी कल्याणी मुनिमनुजमानी प्रमुदिता ॥
महादेवी दुर्गा दरनि दुखदाई दुरगती ।
अनेका एकाकी द्वययुतदशांगी जिनमती ॥१॥
कहैं मातः ! तोकों यदपि सबही नादिनिधना ।

कथंचित् तौ भी तूं उपजि विनशै यों विवरना ॥
धरे नाना जन्म प्रथमजिनके बाद अबलों।
भयो त्यों विच्छेद-प्रचुर तुव लाखों वरषलों।२।
महावीर स्वामी जब सकलज्ञानी मुनि भये॥
विड़ौजाके लाये समवसृतमें गौतम गये॥
तबै नौकारूपा भवजलधि मांहीं अवतरी।
अरूपा निर्वर्णा विगतभ्रम सांची सुखकरी॥३॥
करै जैसैं मेघ ध्वनि मधुर त्यों ही निरखरी।
खिरी प्यारी प्राणी ग्रहण निजभाषामहं करी॥
गणेशोंने झेली बहुत दिन पाली मुनिवर।
रही थी पै तौलों तिन हृदयमें ही घरकर॥४॥
अवस्था कायाकी दिन दिन घटी दीखन लगी।
तथा धीरे धीरे सुबुधि विनशी अंगश्रुतकी॥
तबै दो शिष्योंको सुगुरु धरसेनार्य मुनिने।
पढ़ाया कर्म—प्राभृत सुखद जाना जगतने॥५॥
उन्हींने हे मातः! लिखि लिपि करी अक्षरवती।
संवारी ग्रंथोंमें श्रुततिथि मनाई सुखवती॥
सहारा देते जो नहिं तुमहिं वे यों तिहिं समै।

सदाको सो जाती जग-जलधि-गंभीर-तलमैं ॥६॥
भये पीछे नामी मुनि तिन बचाई विघनतें।
हजारों ग्रंथोंमें रचि रचि रची चारु रुचितें॥
प्रसारी देशोंमें वर त्रिविध भाषामय करी।
लुभाये मिथ्याती लखि विशद युक्तीयुत खरी ।७।
नहीं ऐसा कोई विषय जगमें बुद्धिगत है।
तिहारो जो प्यारो नहिं विमल आभूषण अहै॥
लजैं अन्यावाणी रुचिर तुव ये रूप लखिकैं।
धुनैं माथा हा! हा! करहि चुप होवैं बिलखिकैं॥
धरैं हैं जो प्रानी नित जननि! तोको हृदयमैं।
करैं हैं पूजा वा मन वचन काया करि नमैं॥
पढ़ावैं देवैं जो लिखि २ तथा ग्रंथ लिखवा।
लहैं ते निश्चैसों अमरपदवी मोक्ष अथवा ॥९॥
थके देवेंद्रादी स्तवन नहिं तेरो कर सके।
करैं तो मा! कैसे हम नित अविद्याकर छके॥
तथापि त्वद्भक्ती करत अति उत्साहित हमें।
किये तातें 'प्रेमी' पदवरन एकत्र तुकमें ॥१०॥

इति सरस्वती स्तवन॥

अथ जिनवाणी माताकी स्तुति ।

सवैया मत्तगयंद ।

वीरहिमाचलतें निकरी, गुरुगौतमके मुख कुंड ढरी है । मोहमहाचल भेद चली, जगकी जड़-तातप दूर करी है ॥ ज्ञानपयोनिधि मांहि रली, वहु भंग तरंगनिसों उछरी है । तो शुचि शारदगंगनदीप्रति, मैं अंजुरी करि सीस धरी है ।१। या जगमंदिरमें अनिवार, अज्ञान अंधेर छयो अतिभारी । श्रीजिनकी धुनि दीप शिखासम जो नहिं होत प्रकाशनहारी । तो किस भांति पदारथपांति, कहां लहते रहते अविचारी । या विधि संत कहैं धनि हैं २ जिन बैन बड़े उपकारी । जावानीके ज्ञानतैं, सूझहि लोक अलोक सो वानी मस्तक चढ़ौ, सदा देतहूं धोक । १ ।

निर्वाणकाण्ड ।

दोहा ।

वीतराग बंदौं सदा, भावसहित सिरनाय ।
कहूं कांड निर्वाणकी, भाषा सुगम बनाय ।१।

चोपाई १५ मात्रा।

अष्टापदआदीसुर स्वामि। बासुपूज्य चंपापुरि नामि॥ नेमिनाथस्वामी गिरनार। बंदौं भाव भगति उरधार॥२॥ चरम तीर्थंकर चरम शरीर। पावापुरि स्वामी महावीर॥ शिखरसमेद जिनेसुर वीस। भाव सहित बन्दौं निशदीस॥३॥ वरदत्तराय रु इन्द मुनिन्द। सायरदत्त आदिगुणबृन्द॥ नगरतारवर मुनि उठिकोडि। वंदौं भावसहित कर जोड़ि॥४॥ श्रीगिरिनारशिखर विख्यात। कोड़ि बहत्तर अरु सौ सात॥ संबुप्रदुम्नकुमर द्वै भाय। अनिरुध आदि नमूं तसुपाय॥५॥ रामचन्द्रके सुत द्वै वीर। लाड नरिंद आदि गुणधीर॥ पांच कोडि मुनि मुक्ति मझार। पावागिरि बन्दौं निरधार॥६॥ पांडव तीन द्रविडराजान। आठकोडि मुनि मुकति पयान॥ श्रीशत्रुजयगिरिके सीस। भावसहित बन्दौं निशदीस॥७॥ जे बलभद्र मुकतिमें गये। आठकोडि मुनि औरहिं भये॥ श्रीगज-

पन्थशिखर सुविशाल । तिनके चरण नमूं तिहु=
काल ॥ ८ ॥ राम हनू सुग्रीव सुडील । गयगवा-
ख्य नील महानील ॥ कोडि निन्याणवै मुक्ति-
पयान । तुङ्गीगिरि बन्दौं धरि ध्यान ॥६॥ नंग
अनंग कुमार सुजान । पांचकोडिअरु अर्ध प्रमान
॥ मुक्ति गये सिद्दुनागिरिशीश । ते वन्दौं त्रिभु-
वनपति ईश ॥१०॥ रावणके सुत आदि कुमार।
मुक्ति गये रेवातट सार। कोड़ि पंच अरु लाख पचा-
स ते वंदौं धरि परम हुलास।११। रेवानदी सिद्ध-
वरकूट । पश्चिमदिशा देह जँह छूट ॥ द्वै चक्री
दश कामकुमार । ऊठकोडि बन्दौं भवपार ।१२।
वड़वानी वड़नगर सुचङ्ग । दक्षिण दिश गिरि-
चूल उतङ्ग ॥ इन्द्रजीत अरु कुम्भ जु कर्ण । ते
वन्दौं भवसागरतर्न ।१३। सुवर्णभद्र आदि मुनि
चार । पावागिरिवर शिखर मझार ॥ चलना नदी
तीरके पास । मुक्ति गये बन्दौं नित तास ॥१४॥
फल होडीबडगाम अनूप । पश्चिमदिशा द्रोण-
गिरिरूप ॥ गुरुदत्तादि मुनीसुर जहां । मुक्ति

गये वन्दौं नित तहां ॥ १५ ॥ बाल महाबाल मुनि दोय । नागकुमार मिलें त्रय होय ॥ श्रीअष्टापद मुक्तिमझार । ते वन्दौं नित सुरत संभार ॥१६॥ अचलापुरकी दिश ईशान । तहां मेढ़गिरि नाम प्रधान ॥ साढे तीन कोटि मुनिराय । तिनके चरण नमूं चितलाय ॥ १७ ॥ वंसस्थल वन के ढिंग होय । पश्चिमदिशा कुन्थुगिरि सोय ॥ कुलभूषण दिशभूषण नाम । तिनके चरणनि करूं प्रणाम ॥ १८ ॥ जसरथराजाके सुत कहे । देशकलिंग पांचसौ लहे ॥ कोटि शिला मुनि कोटिप्रमान । वन्दन करूं जोर जुगपान ॥१९॥ समवसरण श्रीपार्श्वजिनन्द । रेसंदीगिरिनयनानन्द ॥ वरदत्तादि पञ्च ऋषिराज । ते वन्दौं नित धरमजिहाज ॥ २० ॥ तीन लोकके तीरथ जहां । नितप्रति वन्दन कीजे तहां ॥ मन वच कायसहित सिरनाय । वन्दन करहिं भविक गुण गाय । २१ । संवत सतरहसौ इकताल । आश्विनसुदि दशमी सुविशाल ॥ "भैया" वन्दन

करहिं त्रिकाल। जय निर्वाणकांड गुणमाल ।२२।

इति ॥

अलोचना पाठ।

दोहा।

वन्दौं पांचों परम गुरु, चौवीसौ जिनराज।
कहूं शुद्ध आलोचना, शुद्धकरनके काज ॥ १ ॥

सखी छन्द (१४) मात्रा।

सुनिये जिन अरज हमारी। हम दोष किये अति भारी ॥ तिनकी अब निर्वृति काजा। तुम शरण लही जिनराजा ॥२॥ इक वे ते चउ इन्द्रीवा। मन रहित सहित जे जीवा ॥ तिनकी नहिं करुणा धारी। निरदई ह्वै घात विचारी ॥ ३ ॥ समरम्भ समारम्भ आरम्भ। मनवचतन कीने प्रारम्भ। कृत कारित मोदन करिकै। क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं ॥ ४ ॥ शत आठ जु इम भेदन तैं। अघ कीने परछेदन तैं ॥ तिनकी कहुं कोलौं कहानी तुम जानत केवलज्ञानी ॥ ५ ॥ विपरीत एकांत विनयके। संशय अज्ञान कुनयके ॥ वश

होय घोर अघ कीने। वचतैं नहिं जात कहीने ॥ ६ ॥ कुगुरुनकी सेवा कीनी। केवल अदया करि भीनी ॥ या विध मिथ्यात भ्रमायो। चहुं गति मधि दोष उपायो ॥ ७ ॥ हिंसा पुनि झूठ जु चोरी। परवनितासों दृगजोरी ॥ आरम्भ परिग्रह भोनो। पुनपाप जु या विधि कोनो ॥ ८ ॥ सपरस रसना घ्राननको। चखु कान विषय सेवनको ॥ वहुकरम किये मन मानो। कछु न्याय अन्याय न जानो ॥ ६ ॥ फल पंच उदंवर खाये। मधु मांस मद्य चित चाहे ॥ नहिं अष्ट मूल गुणधारी। विसन जु सेये दुखकारी ॥ १० ॥ दुइ वीस अभख जिन गाये। सो भी निशिदिन भुञ्जाये। कछु भेदा भेद न पायो। ज्यौं त्यों करि उदर भरायो ॥ ११ ॥ अनंतान जु वन्धो जानो प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो ॥ संज्वलन चौकरी गुनिये। सव भेद जु षोडश मुनिये ॥ १२ ॥ परिहास अरति रति शोग। भय ग्लानि तिवेद-ंजे ॥ पनवीस जु भेद भये इम। इनके वश

पाप किये हम ॥१३॥ निद्रा वश शयन कराई। सुपनेमधि दोप लगाई ॥ फिर जागि विषयवन धायो। नाना विधि विष फल खायो ॥१४॥ किये अहार निहार विहारा। इनमें नहीं जतन विचारा ॥ विन देखी धरी उठाई। विन शोधी भोजन खाई ।१५। तवहीं परमाद सतायो। वहुविधि विकलप उपजायो ॥ कछु सुधिवुधि नाहिं रही है। मिथ्या मति छाय गई है ॥ १६ ॥ मरजादा तुम ढिग लीनी। ताहू मैं दोपजु कीनी ॥ भिन २ अव कैसैं कहिये। तुम ज्ञान विपय सव पइये ॥ १७ ॥ हा! हा! मैं दुष्ट अपराधी। त्रस जीवन राशि विराधी ॥ थावरकी जतन न कीनी। उरमें करुणा नहिं लीनी ॥ १८ ॥ पृथ्वी वहु खोद कराई। महालादिक जांगा चिनाई। पुन विन गाल्यो जल ढोल्यो। पंखाते पवन विलोल्यो ॥ १९ ॥ हा! हा! मैं अदयाचारी। वहु हरितकाय जु विदारी ॥ या मधि जीवनके खंदा। हम खाये धरि आनन्दा ॥ हा! मैं परमाद वसाई। विन देखे अगनि जलाई॥

तामधि जे जीव जु आये । तेहू परलोक सिधाये ॥ २१ ॥ वीध्यो अन राति पिसायो । ईंधन विन सोधि जलायो ॥ झाड़ू ले जांगा वुहारी । चींटी आदिक जीव विदारी ॥ २२ ॥ जल छानि जीवानी कीनी । सोहू पुनि डारि जु दीनी ॥ नहिं जल थानक पहुंचाई । किरिया विन पाप उपाई ।२३। जल मल मोरिन गिरवायो । कृमि कुल वहु घात करायो ॥ नदियन विच चीर धुवाये । कोसनके जीव मारये ।२४। अन्नादिक शोध कराई तामैं जु जीव निसराई ॥ तिनका नहिं जतन कराया । गरियालैं धूप डराया ॥२५॥ पुनि द्रव्य कमावन काज । वहु आरंभ हिंसा साज ॥ कीये तिसना वश भारी । करुणा नहिं रंच विचारी ॥ २६ ॥ इत्यादिक पाप अनंता । हम कीने श्री भगवन्ता ॥ संतति चिरकाल उपाई वानीतैं कहिय न जाई ॥ २७ ॥ ताको जु उदय जव आयो । नाना विधि मोहि सतायो ॥ फल भुंजत जिय दुखः पावै । वचतैं कैसे करि गावै

॥ २८ ॥ तुम जानत केवल ज्ञानी । दुख दूर करो शिवथानो ॥ हम तो तुम शरण लही है । जिन तारन विरद सही है ॥२९॥ जो गांवपती इक होवै । सो भी दुखिया दुख खोवै ॥ तुम तीन भुवनके स्वामी । दुख मेटो अंतरजामी ॥३०॥ द्रोपदिको चीर वढायो । सीताप्रति कमल रचायो ॥ अंजनसे किये अकामी । दुख मेटो अंतरजामी ॥३१॥ मेरे अवगुन न चितारो । प्रभु अपनो विरद ॥ निहारो सब दोषरहित करि स्वामी । दुख मेटहु अंतरजामी ॥३२॥ इंद्रादिक पदवी न चाहूं । विषयनिमें नाहिं लुभाऊं ॥ रागादिक दोष हरीजे । परमातम निजपद दीजे ॥

दोहा ।

दोष रहित जिनदेवजी, जिनपद दीज्यो मोहि ।
सब जीवनके सुख बढ़ै, आनन्द मंगल होय ॥
अनुभवमाणिक पारखी, जौंहरी आप जिनन्द ।
येही वर मोहि दीजिये, चरन सरन आनन्द ॥

इति आलोचनापाठ समाप्त ॥

सामायिक पाठ ।

१ । प्रतिक्रमण कर्म ।

काल अनन्त भ्रम्यों जगमें सहिये दुख भारी ।
जन्ममरण नित किये पापको ह्वै अधिकारी ॥
कोड़ि भवांतरमाहिं मिलन दुर्लभ सामायक ।
धन्य आज मैं भयो योग मिलियो सुखदायक ॥
हे सर्वज्ञ जिनेश किये जे पापजु मैं अब ।
ते सब मनवचकाय योगकी गुप्तिबिना लभ ॥
आप समीप हजूरमाहिं मैं खड़ो खड़ो सब । दोष
कहूं सो सुनो करो नठ दुःख देहिं जब ॥२॥
क्रोध मान मद लोभ मोह मायावशि प्रानी । दुःख
सहित जे किये दया तिनकी नहि आनी ॥ बिना
प्रयोजन एकेंद्रिय बि ति चउ पंचेंद्रिय । आपप्र-
सादहि मिटै दोष जो लग्यो मोहि जिय ॥ ३ ॥
आपसमें इक ठौर थापि करि जे दुख दीने । पेलि
दये पग तलें दाबकरि प्राण हरीने ॥ आप जग-
तके जीव जिते तिन सबके नायक । अरज करौं
मैं सुनो दोष मेटो दुखदायक ॥४॥ अंजन आ-

दिक चोर महा घनघोर पापमय। तिनके जे अपराध भये ते छिमा छिमा किय। मेरे जे अब दोष भये ते छिमो दयानिधि। यह पड़िकोणो कियो आदि पट कर्ममाहिं विधि ॥ ५॥

२ प्रत्याख्यानकर्म।

जो प्रमादवशि होय विराधे जीव घनेरे। तिनको जो अपराध भयो मेरे अघ ढेरे॥ सो सब झूठो होउ जगतपतिके परसादै। जाप्रसादतैं मिलै सर्वसुख, दुःख न लाधैं ॥६॥ मैं पापी निर्लज्ज दयाकरि हीन महाशठ। किये पाप अतिघोर पापमति होय चित्त दुठ॥ निंदूं हूं मैं बारबार निज जियको गरहूं। सबविध धर्म उपाय पाय फिर पापहिं करहूं ॥७॥ दुर्लभ है नरजन्म तथा श्रावककुल भारी। सतसंगति संयोग धर्म जिन श्रद्धाधारी॥ जिनवचनामृतधार समावर्तैं जिनवानी। तौहू जीव संहारे धिक धिक धिक हम जानी ॥८॥ इंद्रियलंपट होय खोय निज ज्ञान जमा सब। अज्ञानी जिम करै तिसी विधि हिंसक ह्वै अब॥

गमनागमन करंतो जीव विराधे भोले । ते सव दोष किये निंदूं अव मनवच तोले ॥९॥ आलोचनविध थकी दोष लागे जु घनेरे । ते सव दोष विनाश होऊतुमतैं जिन मेरे ॥ वारवार इस भांति मोह मद दोष कुटिलता । ईर्षादिकतैं भये निंदिये जे भयभीता ॥१०॥

३ सामायिककर्म ।

सव जीवनसैं मेरे समताभाव जग्यो है । सव जिय मो सम समता राखो भाव लग्यो है ॥ आर्त्त रौद्र द्वय ध्यान छांड़ि करिहूं सामायक ॥ संयम मो कव शुद्ध होय यह भाव वधायक ।११। पृथिवी जल अरु अग्नि वायु चउ काय वनस्पति । पांचहि थावरमाहिं तथा त्रस जीव वसहिं जित ॥ वे इंद्रिय तिय चउ पंचेंद्रिमाहि जीव सव । तिनतैं क्षमा कराऊं मुझपर क्षमा करो अव ॥१२॥ इस अवसरमैं मेरे सव सम कंचन अरु त्रण । महल मसान समान शत्रु अरु मित्र हि सम गण ॥ जामन मरण समान जानि हम

समता कीनी। सामायिकका काल जिते यह भाव नवीनी ॥१३॥ मेरो है इक आतम तानैं ममत जु कीनौ। और सबहिं मम भिन्न जानि समता रसभीनौ। मातु पिता सुत बंधु मित्र तिय आदि सबै यह। मोतैं न्यारे जानि जथारथरूप कस्यो गह ॥१४॥ मैं अनादि जगजालमाहिं फंसि रूप न जाण्यो। एकेंद्रिय दे आदि जंतुको प्राण हराण्यो॥ ते अब जीवसमूह सुनो मेरी यह अरजी। भवभवको अपराध छिमा कीज्यो करि मरजी॥ १५॥

४। स्तवनकर्म।

नमूं ऋषभ जिनदेव अजित जिन जीत कर्मको।
शंभव भवदुखहरण करण अभिनंद शर्मको।
सुमति सुमतिदातार तार भवसिंधु पार कर।
पद्मप्रभ पद्माभ भानि भवभीति प्रीतिधर ॥१६॥
श्रीसुपार्श्व कृतपासनाश भव जास शुद्ध कर।
श्रीचंद्रप्रभ चंद्रकांतिसम देहकांतिधर॥ पुष्पदंत दमि दोषकोष भविपोष रोषहर। शीतल शीतल

करन हरन भवताप दोषहर ॥१७॥ श्रेयरूप जिन श्रेय धेय नित सेय भव्यजन। वासुपूज्य शतपूज्य वासवादिक भवभय हन॥ विमल विमलमतिदेन अंतगत है अनंत जिन। धर्म शर्म शिवकरण शांति जिन शांतिविधायिन॥ १८॥ कुंथु कुंथु मुखजीवपाल अरनाथ जाल हर। मल्लि मल्लसम मोहमल्लमारण प्रचारधर॥ मुनिसुव्रत व्रतकरण नमत सुरसंघहि नमि जिन। नेमिनाथ जिन नेमि धर्मरथ माहिं ज्ञानधन ॥१६॥ पार्श्वनाथ जिन पार्श्व उपलसम मोक्ष रमापति। वर्द्धमान जिन नमूं वमूं भवदुःख कर्मकृत॥ या विध मैं जिनसंघरूप चउवीस संख्यधर। स्तऊं नमूं हूं बारबार वंदौं शिवसुखकर ॥२०॥

५। वंदनाकर्म।

वंदूं मैं जिनवीर धीर महावीर सुसन्मति। वर्द्धमान अतिवीर वंदिहों मनवचतनकृत॥ त्रिशलातनुज महेश धीश विद्यापति वंदूं। वंदूं नितप्रति कनकरूपतनु पाप निकंदूं॥२१॥ सिद्धारथनृपनंद

द्वंद् दुखदोष मिटावन। दुरित दवानल ज्वलित ज्वाल जगजीवउधारन॥ कुंडलपुरकरि जन्म जगतजियआनंदकारन। वर्ष बहत्तरि आयु पाय सब ही दुख टारन।२२।सप्तहस्त तनु तुंग भंगकृत जन्म मरण भय। बालब्रह्ममय ज्ञेय हेय आदेय ज्ञानमय॥ दे उपदेश उधारि तारि भव-सिंधु जीवघन। आप वसे शिवमाहिं ताहि बंदौं मनवचतन॥२३॥ जाकेवंदनथकी दोष दुख दूरहि जावै। जाके बंदनथकी मुक्तितिय सन्मुख आवै। जाके बंदनथकी वंद्य होवैं सुरगनके। ऐसे वीर जिनेश बंदि हूं क्रमयुग तिनके॥२४॥ सामायिक षट्कर्ममाहिं बंदन यह पंचम। बंदौं वीर जिनेंद्र इंद्रशतवंद्य वंद्य मम॥ जन्म मरण भय हरो, करो अघ शांति शांतिमय। मैं अघकोष सुपोष दोषको दोष विनाशय॥२५॥

६। कायोत्सर्गकर्म।

कायोत्सर्ग विधान करूं अंतिम सुखदाई। काय त्यजनमय होय काय सबकों दुखदाई॥ पूरब

दक्षिण नमूं दिशा पश्चिम उत्तरमैं। जिन गृह
वंदन करूं हरूं भव पापतिमिर मैं॥ २६॥
शिरोनती मैं करूं नमूं मस्तक कर धरिकैं।
आवर्त्तादिक क्रिया करूं मनवचमदहरिकैं॥ तीन
लोक जिनभवन माहिं जिन हैं जु अकृत्रिम। कृ-
त्रिम हैं द्वयअर्द्धदीपमाहीं वंदौ जिम॥२७॥ आठ
कोड़ि परि छप्पन लाख जु सहस सत्याणू।
चार शतक पर असी एक जिनमंदिर जाणू॥ व्यं-
तर ज्योतिष माहिं संख्यरहिते जिनमंदिर। जिन
गृह वंदन करुं हरहु मम पाप संघकर॥ २८॥
सामायिक सम नाहिं और कोउ बैर मिटायक।
सामायिक सम नाहिं और कोउ मैत्री दायक॥
श्रावक अणुव्रत आदि अन्त सप्तम गुणथानक।
यह आवश्यक किये होय निश्चय दुख हानक॥
जे भवि आतम काज करण उद्यमके धारी।
ते सब काज विहाय करो सामायिक सारी॥ राग
द्वेष मद मोह क्रोध लोभादिक जे सब। बुद्ध
महाचंद्र विलाय जायं तातैं कीज्यो अब॥३०॥

पञ्च मंगल ।

पणविवि पंच परमगुरु, गुरु जिनसासनो ।
सकलसिद्धिदातार सु, विघनविनासनो ॥
सारद अरु गुरु गौतम, सुमति प्रकाशनो ॥
मंगलकर चउ-संघहिं, पापपणासनो ॥

पापहिंपणासन गुणहिं गरुवा, दोष अष्टादश-रहिउ ।
धरिध्यान करमविनासि केवल, ज्ञान अविचल जिन लहिउ ॥
प्रभु पंचकल्याणक विराजित, सकल सुर नर ध्यावहीं ।
त्रैलोकनाथ सु देव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥१॥

१। गर्भकल्याण ।

जाके गरभकल्याणक, धनपति आइयो ।
अवधिज्ञान—परवान, सु इंद्र पठाइयो ॥
रचि नव बारह जोजन, नयरि सुहावनी ।
कनकरयणमणिमंडित, मंदिर अति बनी ॥

अति बनी पौरि पगार परिखा, सुवन उपवन सोहए ।
नर नारि सुन्दर चतुरभेख सु, देख जनमन मोहए ॥
तहं जनकगृह छहमास प्रथमहिं, रतनधारा बरसियो ।
पुनि रुचिकवासिनि जननि सेवा, करहिं सब विधि हरसियो ॥

सुरकुंजरसम कुंजर, धवल धुरंधरो ।
केहरि केसरशोभित, नख सिखसुन्दरो ॥

कमलाकलस--न्हवन, दुइदाम सुहावनी ।
रविससिमंडल मधुर, मीन जुग पावनी ॥
पावनी कनक घट जुगम पूरन, कमलकलित सरोवरो ।
कल्लोलमालाकुलित सागर, सिंहपीठ मनोहरो ॥
रमणीक अमरविमान फणिपति—भुवन भुवि छवि छाजये ।
रुचि रतन रासि दिपंत दहन सु, तेजपुंज विराजये ॥ ३ ॥

ये सखि सोरह सुपने सूती सयनहीं ।
देखे माय मनोहर, पच्छिम-रयनहीं ॥
उठि प्रभात पिय पूछियो, अवधि प्रकासियो ।
त्रिभुवनपति सुत होसी, फलतिहं भासियो ॥
भासियो फल तिहिं चिंति दंपति, परम आनंदित भये ।
छहमासपरि नवमास पुनि तहं, रैन दिन सुखसों गये ॥
गर्भावतार महंत महिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर जगत मंगल गावहीं ॥ ४ ॥

२ । जन्मकल्याणक ।

मतिश्रुतअवधिविराजित, जिन जब जनमियो ।
तिहूंलोक भयो छोभित सुरगन भरमियो ॥
कल्पबासिघर घंट, अनाहद बज्जियो ।
जोतिषघर हरिनाद, सहज गल गज्जियो ॥
सहजहि शंख भावन भुवन शब्द सुहावने ।

विंतरनिलय पटु पटह वज्जहिं कहत महिमा क्यों बने ॥
कंपित सुरासन अवधिवल जिन-जनम निहचै जानियो।
धनराज तब गजराज माया-मयी निरमय आनियो ॥ ५ ॥

जोजन लाख गयंद, वदन-सौ निरमए।
वदन वदन वसु दंत, दंत सर संठए ॥
सर सर सौ-पनवीस, कमलिनी छाजहीं।
कमलिनि कमलिनि कमल, पचीस विराजहीं ॥

राजहीं कमलिनी कमलऽठोतर, सौ मनोहर दल बने।
दलदलहिं अपछर नटहिं नवरस, हावभाव सुहावने ॥
मणि कनककिंकणि वर विचित्र, सु अमरमंडप सोहए।
घन घंट चंवर धुजा पताका, देखि त्रिभुवन मोहए ॥ ६ ॥

तिहि करि हरि चढ़ि आयउ, सुरपरिवारियो।
पुरिहि प्रदच्छन दे त्रय, जिन जयकारियो ॥
गुप्त जाय जिन-जननिहिं, सुखनिद्रा रची।
मायामइ सिसु राखि तौ, जिन आन्यो सची ॥

आन्यो सची जिनरूप निरखत, नयन तृपत न हूजिये ॥
तब परम हरषित, हृदय हरिने सहस लोचन पूजिये ॥
पुनि करि प्रणाम जु प्रथम इंद्र, उछंग धरि प्रभु लीनऊ।
ईसानइंद्र सु चंद्रछवि सिर, छत्र प्रभुके दीनऊ ॥ ७ ॥

सनतकुमार महेंद्र, चमर दुइ ढारहीं।

शेष सक्र जयकार, शब्द उच्चारहीं ॥
उच्छवसहित चतुरविधि, सुर हरषित भये।
जोजन सहस निन्यानवै, गगन उलंघि गये ॥

लंघि गये सुरगिरि जहां पांडुक,-वन विचित्र विराजहीं।
पांडुकशिला तहं अर्धचंद्रसमान, मणि छवि छाजहीं ॥
जोजन पचास विशाल दुगुणायाम, वसु ऊंची गनी।
वर अष्ट मंगल-कनक कलसनि सिंहपीठ सुहावनी ॥ ८ ॥

रचि मणिमंडप सोभित, मध्य सिंहासनो ।
थाप्यो पूरव मुख तहं, प्रभु कमलासनो ॥
बाजहिं ताल मृदंग, वेणु वीणा घने ।
दुंदुभि प्रमुख मधुरधुनि, अवर जु बाजने ॥

बाजने बाजहिं सचीं सब मिलि, धवल मंगल गावहीं ।
पुनि करहिं नृत्य सुरांगना सब, देव कौतुक धावहीं ॥
भरि छीरसागर जल जु हाथहिं, हाथ सुर गिरि ल्यावहीं ।
सौधर्म अरु ईसानइंद्र सु, कलस ले प्रभु न्हावहीं ॥ ६ ॥

वदन-उदर-अवगाह, कलसगत जानिये।
एक चार वसु जोजन, मान प्रमानिये ॥
सहस-अठोतर कलसा, प्रभुके सिर ढरै ।
सिंगार प्रमुख आचार सबै करै ॥

करि प्रगट प्रभु महिमामहोच्छव, आनि पुनि मातहिं दए ।
धनपतिहिं सेवा राखि सुरपति, आप सुरलोकहिं गए ॥
जनमाभिषेक महंत महिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर जगत मंगल गावहीं ॥ १० ॥

३। तप कल्याणक ।

श्रमजल रहित सरीर, सदा सब मलरहिउ ।
छीर वरन—वर रुधिर, प्रथम आकृति लहिउ ॥
प्रथम सार संहनन, सुरूप विराजहीं ।
सहज सुगन्ध सुलच्छन, मंडित छाजहीं ॥
छाजहिं अतुलबल परम प्रिय हित, मधुर वचन सुहावने ।
दस सहज अतिशय सुभग मूरति, बाललील कहावने ॥
आबाल काल त्रिलोकपति मन,-रुचिर उचित जु नित नए ।
अमरोपनीत पुनीत अनुपम, सकल भोग विभोगए ॥ ११ ॥
भवतन-भोग-विरत्त, कदाचित चित्तए ।
धन जोवन पिय पुत्त, कलत्त अनित्तए ॥
कोउन सरन मरन दिन , दुख चहुगति भर्‍यो ।
सुख दुख एकहि भोगते, जिय विधिवस पर्‍यो ॥
पर्‍यो विधिवस आन चेतन, आन जड जु कलेवरो ।
तन असुचि परतैं होय आस्रव, परिहरेतैं संवरो ॥
निरजरा तपबल होय, समकित, बिन सदा त्रिभुवन भम्यो ।

दुर्लभ विवेक विना न कबहूं, परम धरमविषै रम्यो ॥ १२ ॥

ये प्रभु बारह पावन, भावन भाइया।
लौकांतिक वरदेव, नियोगी आइया॥
कुसुमांजलि दे चरन, कमल सिर नाइया।
स्वयंबुद्ध प्रभु थुतिकरि, तिन समुझाइया॥

समुझाय प्रभुको गये निजपुर, पुनि महोच्छव हरि कियो।
रुचिरुचिरचित्र विचित्र सिविका, कर सुनंदन-वन लियो॥
तहं पंचमुष्टी लोंच कीनो, प्रथम सिद्धनि नुति करी।
मंडिय महाव्रत पंच दुद्धर, सकल परिग्रह परिहरी ॥ १३ ॥

मणिमय भाजन केस, परिट्ठिय सुरपति।
छीर-समुद-जल खिपकरि, गयो अमरावती॥
तप संयमबल प्रभुको, मनपरजय भयो।
मौनसहित तप करत, काल कछु तहं गयो॥

गयो कछु तहं काल तपवल, रिद्धि वसु विधि सिद्धिया।
जसु धर्मध्यानवलेन खयगय, सप्त प्रकृति प्रसिद्धियां॥
खिपि सातवेंगुण जतनविन तहं, तीन प्रकृति जु बुधि वढिउ।
करि करण तीन प्रथम सुकलवल, क्षिपकसेनी प्रभु चढिउ ॥१४॥

प्रकृति छतीस नवें-गुण, थान विनासिया।
दसवें सूच्छमलोभ, प्रकृति तहं नासिया॥
सुकल ध्यान पद दूजो पुनि प्रभु पूरियौ।

बारहवें-गुण सोरह, प्रकृति जु चूरियौ ॥
चूरियौ त्रैसठ प्रकृति इहविध, घातिया करमनि तणी ।
तप कियो ध्यानप्रयंत बारह-विध त्रिलोकसिरोमणी ॥
निःक्रमण कल्याणक सु महिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥ १५ ॥

४। ज्ञानकल्याणक।

तेरहवें गुण—थान, सयोगि जिनेसुरो ।
अनंतचतुष्टयमंडित, भयो परमेसुरो ॥
समवसरन तब धनपति, बहुविधि निरमयो ॥
आगमजुगतिप्रमान, गगनतल परिठयो ॥
परिठयो चित्र विचित्र मणिमय, सभामंडप सोहए ।
तिहिं मध्य बारह बने कोठे, बैठ सुरनर मोहए ॥
मुनि कलपबासिनि अरजिका पुनि, ज्योति-भौमि-भवनतिया ।
पुनि भवन व्यंतर नभग सुर नर, पसुनि कोठे बैठिया ॥१६॥
मध्यप्रदेस तीन, मणिपीठ तहां बने ।
गंधकुटी सिंहासन, कमल सुहावने ॥
तीन छत्र सिर सहित त्रिभुवन मोहए ।
अंतरीच्छ कमलासन, प्रभुतन सोहए ॥
सोहए चौसठि चमर ढरत, असोकतरु तल छाजए ।
पुनि दिव्यधुनि प्रतिसबद्जुत तहं, देवदुंदुभि बाजए ॥

सुरपुहुपवृष्टि सुप्रभामंडल, कोटि रवि छवि छाजए ।
इमि अष्ट अनुपम प्रातिहारज, वर विभूति विराजए ॥ १७ ॥

दुइसै जोजनमान सुभिच्छ चहूं दिसी ।
गगन गमन अरु प्राणी,-वध नहिं अहनिसी ।
निरुपसर्ग निरहार, सदा जगदोसए ।
आनन चार चहूं दिसि, सोभित दीसए ॥
दीसय असेम विसेस विद्या, विभव वर ईसुरपना ।
छायाविवर्जित सुद्ध फटिक समान तन प्रभुका वना ॥
नहि नयन पलक पतन कदाचित, केस नख सम छाजहीं ।
ये घातियाछयजनित अतिसय, दस विचित्र विराजहीं ॥१८॥

सकल अरथमय मागधि—भाषा जानिये ।
सकल जीवगत मैत्री—भाव वखानिये ॥
सकल रितुज फलफूल वनस्पति मर हरै ।
दरपनसम मनि अवनि, पवन गति अनुसरै ॥
अनुसरै परमानंद सबको, नारि नर जे सेवता ।
जोजन प्रमाण धरा सुमार्जहिं, जहां मारुतदेवता ॥
पुनि करहिं मेघकुमार गंधो,-दक सुवृष्टि सुहावनी ।
पदकमलतर सुर खिपहिं कमलसु, धरणि ससिशोभा वनी ॥१९॥

अमल गगन तरु अरु दिस, तहं अनुहारहीं ।
चतुरनिकाय देवगण, जय जयकारहीं ॥

धर्मचक्र चले आगे, रवि जहं लाजहीं ।
पुनि भृंगार-प्रमुख वसु, मंगल राजहीं ॥
राजहीं चौदह चारु अतिशय, देव रचित सुहावने ।
जिनराज केवलज्ञानमहिमा, अवर कहत कहा बने ॥
तब इंद्र आय कियो महोच्छव, सभा सोभा अति बनी ।
धर्मोपदेश दियो तहां, उचरिय वानी जिनतनी ॥ २० ॥
छुधा तृषा अरु राग, द्वेष असुहावने ।
जनम जरा अरु मरण, त्रिदोष भयावने ॥
रोग सोग भय विस्मय, अरु निद्रा घनी ।
खेद स्वेद मद मोह, अरति चिंता गनी ॥
गनिये अठारह दोष तिनकरि, रहित देव निरञ्जनो ।
नव परमकेवललब्धिमण्डित, सिवरमनि-मनरंजनो ॥
श्रीज्ञानकल्याणक सुमहिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥

५। निर्वाण कल्याणक ।

केवलदृष्टि चराचर, देख्यो जारिसो ।
भव्यनिप्रति उपदेस्यो, जिनवर तारिसो ॥
भवभयभीत भविकजन सरणै आइया ।
रत्नत्रयलच्छन सिवपंथ लगाइया॥
लगाइया पंथ जु भव्य पुनि प्रभु, तृतिय सुकल जु पूरियो ।

तजि तेरहें गुणथान जोग, अजोगपथपग धारियो ॥
पुनि चौदहे चौथे सुकलबल वहत्तर तेरह मती ।
इमि घाति वसुविधि कर्म पहुंच्यो समयमें पंचमगती ॥ २२ ॥
लोकसिखर तनुवात,—वलयमहं संठियो ।
धर्मद्रव्यविन गमन न जिहि आगैं कियो ॥
मयनरहित मूषोदर, अंबर जारिसो ।
किमपि हीन निजतनुतैं, भयो प्रभु तारिसो ॥
तारिसो पर्जय नित्य अविचल, अर्थपर्जय छनछयी.।
निश्चयनये अनंतगुण, विवहार नयं वसुगुणमयी ॥
वस्तु स्वभाव विभावविरहित सुद्ध परणति परिणयो।
चिद्रूप परमानंदमंदिर, सिद्धपरमातम भयो ॥ २३ ॥
तनुपरमाणू दामिनिपर, सब खिर गये ।
रहे शेष नखकेस-रूप, जे परिणये ॥
तव हरिप्रमुख चतुरविधि, सुरगण शुभसच्यो ।
मायामइ नखकेस रहित, जिनतनु रच्यो ॥
रचि अगर चंदन प्रमुख परिमल, द्रव्यजिन जयकारियो ।
पदपतित अगनिकुमार मुकुटानल, सुविधि संस्कारियो ॥
निर्वाणकल्याणक सुमहिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
भणि 'रूपचन्द' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥ २४ ॥
मैं मतिहीन भगतिवस, भावन भाइया ।

'मंगलगीतप्रबंध' सु, जिनगुण गाइया ॥
जो नर सुनहिं बखानहिं सुर धरि गावहीं ।
मनवांछित फल सो नर, निहचै पावहीं ॥
पावहीं आठो सिद्धि नवनिधि, मन प्रतीत जो लावहीं ।
भ्रमभाव छूटै सकल मनके, निजस्वरूप लखावहीं ॥
पुनि हरहिं पातक टरहिं विघन, सु होहिं मंगल नित नये ।
भणि 'रूपचंद' त्रिलोकपति जिनदेव चउसंघहिं गये ॥ २५॥

इति रूपचंदकृत पंचमंगल समाप्त ॥

हरजसराय कृत अभिषेक पाठ ।

दोहा ।

जय जय जयवंते सदा, मंगलमूल महान ।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभु, नमौं जोरि जुगपान ॥

चाल मंगलकी छंद गीता और अडिल्ल ।

श्रीजिन जगमें ऐसो, को बुधवंत जू ।
जो तुम गुणवरननि, करि पावै अंत जू ॥
इंद्रादिक सुर चार,—ज्ञानधारी मुनी ।
कहि न सके तुम गुणगण, हे त्रिभुवनधनी ॥
अनुपम अमित तुम गुणनि वारिधि, ज्यों अलोकाकाश है । किमि धरैं हम उरकोशमें सो

अकथ गुणमणिराश है ॥ पै निज प्रयोजन-सिद्धिकी तुम नामहीमें शक्ति है। यह चित्तमें सरधान यातैं, नामहीमें भक्ति है ॥१॥

ज्ञानावरणी दर्शनआवरणी भने।
कर्ममोहनी अन्तराय चारौ हने ॥
लोकालोक विलोको केवलज्ञानमें।
इंद्रादिकके मुकुट नये सुरथानमें ॥

तव इंद्र जान्यो अवधितैं, उठि सुरनयुत बंदत-भयो। तुम पुन्यको प्रेर्यो हरी ह्वै, मुदितधन-पतिसौं चयौ ॥ अव वेगि जाय रचौ समवसृति, सफल सुरपदकौं करौ। साक्षात श्रीअरहंतके, दर्शन करौ कल्मषहरो ॥२॥

ऐसे वचन सुने सुरपतिके धनपती।
चल आयौ ततकाल, मोद धारे अती ॥
वीतराग छवि देखि, शब्द जय जय चयौ।
दै प्रदक्षिणा बार बार, बंदत भयो ॥

अति भक्तिभीनो नम्रचित ह्वै, समवसरण रच्यौ सही। ताकी अनूपम शुभगतीको, कहन

समरथ कोउ नही ॥ प्राकार तोरण सभामंडप कनक मणिमय छाजही। नग-जड़ित गंधकुटी मनोहर, मध्यभाग विराजही ॥३॥

सिंहासन तामध्य, बन्यो अद्भुत दिपै।
तापर वारिज रच्यो प्रभा दिनकर छिपै ॥
तीन छत्र सिर शोभित, चौसठ चमरजी।
महाभक्तियुत ढोरत है, तहां अमरजी ॥

प्रभु तरन तारन कमल ऊपर, अन्तरोच्छ विराजिया। यह वीतरागदशा प्रतच्छ, विलोकि भविजन सुख लिया ॥ मुनि आदि द्वादश सभाके, भवि जीव मस्तक नायकैं। वहु भांति वारंवार पूजैं, नमैं गुणगण गायकैं ॥४॥

परमौदारिक दिव्य देह पावन सही।
छुधा तृषा चिंता भय गद दूषण नही ॥
जन्म जरा मृति अरति शोक विस्मय नसै।
राग द्वेष निद्रा मद, मोह सबै खसै ॥

श्रम विना श्रमजलरहित पावन, अमल जोतिस्वरूपजी ॥ शरणागतनिकी अशुचिता हरि,

करत विमल अनूपजी ॥ ऐसे प्रभूकी शांतिमुद्रा, को न्हवन जलतैं करैं। 'जस' भक्तिवश मन उक्तितैं हम, भानु ढिंग दीपक धरैं ।५।

तुम तो सहज पवित्र, यही निश्चय भयो।
तुम पवित्रता हेत, नहीं मज्जन ठयो ॥
मैं मलीन रागादिक, मलतैं ह्वै रह्यो।
महा मलिन तनमैं वसु,विधिवश दुख सह्यो॥

बीत्यो अनंतो काल यह, मेरी अशूचिता ना गई। तिस अशुचिताहर एक तुम ही भरहु वांछा चित ठई ॥ अब अष्ट कर्म विनास सब मल,—रास रागदिक हरो। तनरूप कारागेहतैं उद्धार, शिव-वासा करो ॥ ६ ॥

मैं जानत तुम अष्ट कर्म हरि शिव गये।
आवागमन विमुक्त राग वर्जित भये॥
पर तथापि मेरो मनरथ पूरत सही।
नय प्रमान तैं जानि महा साता लही॥

पापाचरण तजि न्हवन करतौ, चित्तमैं ऐसे धरूं। साक्षात श्रीअरहंतको, मानौं न्हवन पर-

सन करूं ॥ ऐसे विमल परिणाम होतैं, अशुभ परणति नासतैं। विधि अशुभ नसि शुभबंधतैं, ह्वै शर्म सब विधि तासतैं ॥ ७ ॥

पावन मेरे नयन, भये तुम दरसतैं।
पावन पानि भये तुम, चरननि परसतैं ॥
पावन मन ह्वै गयो, तिहारे ध्यानतैं।
पावन रसना मानी, गुणगण गानतैं ॥

पावन भई परजाय मेरी, भयौ मैं पूरणधनी। मैं शक्तिपूर्वक भक्ति कीनी, पूर्ण भक्ति नहीं वनी ॥ धन धन्यते बड़भागि भवि, तिन नीव शिवघरकी धरी। वर क्षीरसागर आदि जलमणि, कुंभ भरि भक्ती करी ॥८॥

विघनसघनवनदाहन, दहन प्रचंड हो।
मोह महातम दलन, प्रबल मारतंड हो ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश, आदि संज्ञा धरो।
जगविजयी जमराज, नाश ताको करो ॥

आनंदकारण दुःखनिवारण, परम मंगलमय सही मोसौ पतित नहिं और तुमसौ, पतिततार सुन्यो

नही ॥ चिंतामणी पारस कलपतरु, एक भव सुखकार ही। तुम भक्तिनवका जे चढैं ते भये भवदधि पार ही ॥९॥

दोहा।

तुम भवदधितैं तरि गये, भये निकल अविकार।
तारतम्य इस भक्तिको, हमै उतारो पार ॥१०॥

इति हरजसराय कृत अभिषेकपाठ ॥

—:o:—

अथ पंचामृत—अभिषेकपाठ।

श्रीजिनवर चौबीस वर, कुनयध्वांतहर भान।
अमितवीर्यदृगबोधसुख, युत तिष्ठौ इह थान ।१।

नाराच छंद।

गिरीश सीस पांडुपै, सचीस ईस थापियो।
महोत्सवो अनंदकंदको, सबै तहां कियो॥
हमैं सो शक्ति नाहिं, व्यक्त देखि हेतु आपना।
यहां करैं जिनेंद्रचंद्रकी सुबिंबथापना ॥२॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करके श्रीवर्णपर जिनबिंबकी स्थापना करना)

सुंदरीछंद।

[illegible] कुंभ सुहावने। हरि सुछीर भरे

अति पावने। हम सुवासित नीर यहां भरैं। जगत पावन-पांय तरैं धरैं ॥ ३ ॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करके वेदीके कोनोंमें चार कलशोंकी स्थापना)

हरिगीताछंद।

शुद्धोपयोग समान भ्रमहर, परम सौरभ पावनो। आकृष्ट भृंगसमूह गंग-समुद्भवो अति भावनो॥ मणिकनककुंभ निसुंभकिल्विष, विमल शीतल भरि धरों। श्रम स्वेदमल निरवार जिन, त्रय-धार दे पांयनि परों ॥ ४ ॥

(शुद्ध जलको तीन धारा जिनविंबपर छोड़ना)

अति मधुर जिनधुनिसम सुप्राणित, प्राणिवर्ग स्वभावसों। वुधचित्तसम हरिचित्त नित्त, सुमिष्ट इष्ट उछावसों। तत्काल इक्षुसमुत्थप्रासुक रत्न कुंभविषैं भरों। यमत्रासतापनिवार जिन त्रयधार दे पांयनि परौं ॥ ५ ॥

(इक्षुरसकी धारा)

निष्टप्तत्प्तिसुवर्णमदद्मनीय ज्यौं विध जैनकी। आयुप्रदा वलवुद्धिदा रक्षा, सुयौं जिय-सैनकी॥ तत्कालमंथित, क्षीर-उत्थित, प्राज्य मणिझारी

भरौं। दीजै अतुलबल मोहि जिन, त्रयधार दै पांयनि परौं ॥६॥

(घृतरसकी धारा)

शरदभ्र शुभ्र सुहाटकद्युति, सुरभि पावना सोहनो। क्लीबत्वहर बलधरन पूरन, पयसकल मनमोहनो ॥ कृतउष्ण गोथनतैं समाहृत, घट जटित मणिमैं भरौं। दुर्बल दशा भो मेट जिन-त्रयधार दे पांयनि परौं ॥ ७ ॥

(दुग्धकी धारा)

वर विशद जैनाचार्य ज्यौं मधुराम्लकर्कशता-धरैं। शुचिकर रसिक मंथन विमंथन नेह दोनौं अनुसरैं ॥ गोदधि सुमणि भृंगार पूरन लायकर आगैं धरौं। दुखदोष कोष निवार जिन त्रयधार दे पांयनि परौं ॥८॥ (दहीकी धारा)

दोहा।

सर्वौषधी मिलायके, भरि कंचन भृंगार।
यजौं चरण त्रयधार दे, तार तार भवतार ॥९॥

(सर्वौषधिको धारा)

इति पंचामृताभिषेकपाठ

देवशास्त्रगुरुकी भाषा पूजा ।

अडिल्ल छंद ।

प्रथमदेव अरहंत सुश्रुतसिद्धांत जू ।
गुरु निरग्रन्थ महंत मुकतिपुरपंथ जू ॥
तीन रतन जगमांहिं सो ये भवि ध्याइये ।
तिनकी भक्तिप्रसाद परमपद पाइये ॥१॥
पूजौं पद अरहंतके, पूजौं गुरुपद सार ।
पूजौं देवी सरसुतो, नितप्रति अष्टप्रकार ॥१॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरु समुह ! अत्र अवयर अवतर । संवौषट् ।
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरु समुह ! अत्र तिष्ट तिष्ट । ठः ठः ।
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरु समुह ! अत्र मम संनिहितो भव भव वषट् ।

गीता छंद

सुरपति उरग नरनाथ तिनकर, वंदनोक सुपद-प्रभा । अति शोभनीक सुवरण उज्ज्वल, देख छवि मोहित सभा ॥ वर नीर छीर समुद्रघट भरि, अग्र तसु वहुविधि नचूं । अरहंतश्रुतसिद्धांत गुरु निरग्रन्थ नितपूजा रचूं ।

मलिनवस्तु हरलेत सव जलस्वभाव मलछीन ।
जासौं पूजौं परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥१॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरा मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामिति स्वाहा ॥ १ ॥

जे त्रिजग उदरमंझार प्राणी तपत अति दुद्धर खरे। तिन अहितहरन सुवचन जिनके परम शीतलता भरे ॥ तसु भ्रमरलोभित घ्राण पावन, सरस चंदन घसि सचूं। अरहंत श्रुतसिद्धांतगु-रुनिरग्रन्थ नितपूजा रचूं ॥२॥

चंदन शीतलता करैं, तपतवस्तु परवीन।
जासौं पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥२॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदन निर्वपा-मीति स्वहा ॥ २ ॥

यह भवसमुद्रअपार तरण, के निमित्त सुविधि ठई। अति दृढ़ परमपावन जथारथ, भक्ति वर नौका सही ॥ उज्ज्वल अखंडित सालि तंदुल, पुंज धरि त्रयगुण जचूं। अरहंत श्रुतसिद्धांतगु-रुनिरग्रन्थ नितपूजा रचूं ॥३॥

तंदुल सालि सुगंध अति परम अखंडितवीन।
जासौं पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥३॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽक्षय पदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

(यहांपर अक्षतोंके चढ़ानेमें तीन पुन्ज करने चाहिये अधिक नहीं)

जे विनयवंत सुभव्य—उर अंबुज—प्रकाशन भान हैं। जै एकमुखचारित्र भाषहिं, त्रिजगमाहिं, प्रधान हैं॥ लहि कुंद कमलादिक पहुप भव-भव कुवेदनसौं बचूं। अरहंतश्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥४॥

विविध भांति परिमल सुमन, भ्रमरजासआधीन।
तासौं पूजौं परमपद, देवशास्त्र गुरु तीन ॥४॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

अति सबल मदकंदर्प जाको, क्षुधा उरग अमान है। दुस्सह भयानक तास नाशनकौं सु गरुड समान है॥ उत्तम छहों रसयुक्त नित नैवेद्यकरि घृतमें पचूं। अरहंत श्रुतसिद्धांतगुरु निरग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥५॥

नानाविध संयुक्तरस, व्यंजन सरस नवीन।
जासौं पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥५॥

ओंह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय चरुं निर्वपामीति स्वाहा

जे त्रिजग उद्यम नाश कीने मोहतिमिर महावली। तिहिं कर्मघाती ज्ञानदीपप्रकाशजोति प्रभावली॥ इहभांति दीप प्रजाल कंचनके सुभाजनमें खचूँ। अरहंतश्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रन्थ नितपूजा रचूं॥६॥

स्वपरप्रकाशक जोति अति, दीपक तमकरिहीन
जासौं पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन॥६॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जो कर्म-ईंधन दहन अग्निसमूह सब उद्धत लसैं वर धूप तासु सुगंधताकरि सकल परिमलता हंसैं॥ इहभांति धूप चढ़ाय नित, भवज्वलन मांहि नहीं पचूं। अरहंत श्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रन्थ नितपूजा रचूं॥७॥

अग्निमाहिं परिमल दहन, चन्दनादि गुणलीन।
जासौं पूजौं परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन॥७॥

ओंह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा॥

लोचन सुरसना घ्रान उर, उत्साहके करतार हैं। मोपै न उपमा जाय वरणी, सकल फल गुण सार हैं। सो फल चढ़ावत अर्थ पूरन, सकल अमृत-रस सचूं॥ अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रन्थ नित पूजा रचूं॥८॥

जे प्रधान फल फलविषैं, पंचकरण—रसलीन।
जासौं पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन॥८॥

ओंह्री देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा॥

जल परम उज्ज्वल गंध अच्छत, पुष्प चरुदीपक धरूं। वर धूप निरमल फल विविध, बहु जन-मके पातक हरूं॥ इहभांति अर्घ चढ़ाय नित भवि, करत शिव पंकति मचूं। अरहंत श्रुत-सिद्धांतगुरुनिरग्रन्थ नित पूजा रचूं॥ ६॥

वसुविधि अर्घ सँजोयकैं, अति उछाह मनकीन।
जासौं पूजौं परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन॥६॥

ओंह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

अथ जयमाला।

देवशास्त्रगुरुरतनशुभ, तीनरतन करतार।

भिन्न २ कहुं आरती, अल्प सु गुणविस्तार ॥१॥

पद्धिड़ छंद।

चउकर्मकि त्रेसठ प्रकृति नाशि। जीते अष्टाद-शदोषराशि ॥ जे परम सु गुण हैं अनँत धीर। कहवतके छ्यालीस गुण गंभीर ॥२॥ शुभ सम-वशरणशोभा अपार। शत इन्द्र नमत कर शीसधार ॥ देवाधिदेव अरहंतदेव। वंदौं मनवच तनकरि सु सेव ॥३॥ जिनकी धुनि है ओंकार-रूप। निर अक्षरमय महिमा अनूप ॥ दश अष्ट महाभाषा समेत। लघुभाषा सात शतक सुचेत ॥४॥ सो स्यादवादमय सप्तभंग। गण धर गून्थें बारह सु अङ्ग ॥ रवि शशि न हरै सो तम हराय। सो शास्त्र नमौं बहु प्रीति ल्याय ॥५॥ गुरु आचारज उवझाय साध। तन नगर रतनत्रयनिधि आगाध ॥ संसारदेह वैराग्यधार। नरवांछि तपैं शिवपद निहार ॥६॥ गुण छत्तिस पच्चिस आठवीस। भवतारनतरनजिहाज ईस। गुरुकी महिमा वरनो न जाय। गुरुनाम जपौं मनवचनकाय ॥७॥

कीजे शक्ति प्रमाण, शक्ति विना सरधा धरै।
'द्यानत' सरधावान, अजर अमरपद भोगवै ॥
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
इति देवशास्त्रगुरुकी पूजा ॥

वीसतीर्थंकर पूजा भाषा ।

दीप अढाई मेरु पन, अब तीर्थंकर वीस ।
तिन सबकी पूजा करूं, मनवचतन धरि सीस ॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करा ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् ।
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करा ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः ।
ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करा ! अत्र मम सन्निहिता भवत भवत । वषट् ।

इन्द्रफणींद्रनरेंद्रवंद्य, पद निर्मलधारी । शोभनीक संसार, सार गुण हैं अविकारी । क्षीरोदधिसम नीरसों (हो), पूजों तृषा निवार । सीमंधर जिन आदि दे, वीस विदेहमंझार । श्रीजिनराज हो भव,—तारणतरणजिहाज ॥१॥

ओंह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं

तीनलोकके जीव, पाप आताप सताये । तिनकों साता दाता, शीतल वचन सुहाये ॥ बावन चंदनसों जजूं (हो), भ्रमनतपन निरवार । सी०

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो भवतापविनाशनाय चन्दनं नि०

यह संसार अपार, महासागर जिनस्वामी। तातैं तारे बड़ो भक्ति—नौका जग नामी॥ तंदुल अमल सुगंधसों (हो), पूजों तुम गुणसार। सीमंधर० ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

भविक सरोज-विकाश, निंद्य तमहर रविसे हो। जतिश्रावकआचार कथनको, तुम्हीं बड़े हो॥ फूलसुवास अनेकसों (हो), पूजों मदनप्रहार। सीमं० ॥४॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

कामनाग विषधाम,—नाशको गरुड़ कहे हो। क्षुधा महादवज्वाल, तासुको मेघ लहे हो॥ नेवज बहुघृतमिष्टसों (हो), पूजों भूखविडार। सीमं० ॥५॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

उद्यम होन न देत, सर्व जगमाहिं भर्यौ है।

मोहमहातम घोर, नाश परकाश कर्यौ है ॥
पूजों दीपप्रकाशसों (हो) ज्ञानज्योतिकरतार ।
सीमं० ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं विद्यमाविंशनितोर्थङ्करेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्व० ॥ ६ ॥

कर्म आठ सब काठ,—भार विस्तार निहारा
ध्यान अगनिकर प्रकट, सरब कोनो निरवारा ॥
धूप अनूपम खेवतें (हो), दुःख जलैं निरधार।
सीमं० ॥७॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्व-पामाति स्वाहा ॥७॥

मिथ्यावादो दुष्ट, लोभऽहंकार भरे हैं। सबको छिनमें जीत, जैनके मेर खरे हैं॥ फल अति उत्तमसों जजों (हो), वांछितफलदातार ।
सीमं० ॥८॥

ओं ह्रीं विद्यामानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्व-पामोति स्वाहा ॥८॥

जल फल आठो दर्व, अरघ कर प्रीत धरी है ।
गणधर इन्द्रनिहूतैं, थुति पूरी न करी है। 'द्या-

नत' सेवक जानके (हो), जगतैं लेहु निकार ।

सीमं० ।६।

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥६॥

अथ जयमाला आरती ।

सोरठा ।

ज्ञानसुधाकर चन्द, भविकखेतहित मेघ हो ।
भ्रमतमभान अमंद, तीर्थंकर बीसों नमो ॥१॥

चौपाई ।

सीमंधर सीमंधर स्वामी । जुगमंधर जुगमंधर नामी ।
बाहु बाहु जिन जगजन तारे । करम सुबाहु बाहुबल दारे ॥
जात सुजात केवलज्ञानं । स्वयंप्रभू प्रभु स्वयं प्रधानं ।
ऋषभानन ऋषि भानन दोषं । अनंतवीरज वीरजकोशं ॥२॥
सौरीप्रभ सौरीगुणमालं । सुगुण विशाल विशाल दयालं ।
वज्रधार भवगिरिवज्जर हैं । चन्द्रानन चन्द्रानन वर हैं ॥ ३ ॥
भद्रबाहु भद्रनिके करता । श्रीभुजंग भुजंगम भरता ।
ईश्वर सबके ईश्वर छाजें । नेमिप्रभू जसनेमि विराजैं ॥४॥
वीरसेन वीरं जग जाने । महाभद्र महाभद्र बखाने ।
नमों जसोधर जसधरकारी । नमों अजितवीरज बलधारी ॥
धनुष पांचसै काय विराजै । आयु कोडिपूरव सब छाजै ।
समवसरण शोभित जिनराजा । भवजलतारनतरन जिहाजा ॥

सम्यक रत्नत्रयनिधि दानी । लोकालोकप्रकाशक ज्ञानी ।
शत इन्द्रनिकरि वंदित सोहैं । सुरनर पशु सबके मन मोहैं ॥

दोहा ।

तुमको पूजै वन्दना, करै धन्य नर सोय ।
'द्यानत' सरधा मन धरै, सो भी धरमी होय ॥८॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अथ सिद्धपूजा ।

ऊर्ध्वाधो रयुतं सबिन्दुसपरं, ब्रह्मस्वरावेष्टितं
वर्गापूरितदिग्गताम्बुजदलं, तत्सन्धितत्त्वान्वितं
अन्तःपत्रतटेष्वनाहतयुतं ह्रींकारसंवेष्टितं ।
देवं ध्यायति यःस मुक्तिसुभगो वैरीभकण्ठीरवः

ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र अवतर अवतर । संवौषट् । ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठि अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः । ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

निरस्तकर्मसम्बन्धं सूक्ष्मं नित्यं निरामयं ।
वन्देऽहं परमात्मानममूर्त्तमनुपद्रवं ॥१॥

(सिद्धयन्त्रकी स्थापना)

सिद्धौ निवासमनुगं परमात्मगम्यं
हीनादिभावरहितं भववीतकायम् ।

रेवापगावरसरो-यमुनोद्भवानां
नीरैर्यजे कलशगैर्वरसिद्धचक्रम् ॥१॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

आनन्दकन्दजनकं घनकर्ममुक्तं
सम्यक्त्वशर्मगरिमं जननार्तिवीतं ।
सौरभ्यवासितभुवं हरिचन्दनानां
गन्धैर्यजे परिमलैर्वरसिद्धचक्रं ॥ २ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्व० ॥

सर्वावगाहनगुणं सुसमाधिनिष्ठं
सिद्धं स्वरूप, निपुणं कमलं विशालम् ।
सौगन्धशालिवनशालिवराक्षतानां
पुञ्जैर्यजे शशिनिभैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान निर्व० ॥

नित्यं स्वदेहपरिमाणमनादिसंज्ञं
द्रव्यानपेक्षममृतं मरणाद्यतीतं ।
मंदारकुंदकमलादिवनस्पतीनां

पुष्पैर्यजे शुभतमैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामवाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्व० ॥

ऊर्ध्वस्वभावगमनं सुमनोव्यपेतं
ब्रह्मादि बीज सहितं गगनाव भासं ।
क्षीरान्नसाज्यवटकै रसपूर्णगर्भै—
र्नित्यं यजे चरुवरैर्वरसिद्धचक्रं ॥५॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनासनाय नैवेद्यं निर्व० ॥

आतंकशोक भयरोगमदप्रशांतं
निर्द्वन्द्वभावधरणं महिमानिवेशम् ।
कर्पूरवर्तिबहुभिः कनकावदातै—
र्दीपैर्यजे रुचिवरैर्वरसिद्धचक्रं ॥६॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्व० ॥६॥

पश्यन्समस्तभुवनं युगपन्नितान्तं
त्रैकाल्यवस्तुविषये निविडप्रदीपं ।
सद्द्रव्यगन्धघनसारविमिश्रितानां
धूपैर्यजे परिमलैर्वरसिद्धचक्रं ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥७॥

सिद्धासुरादिपतियक्षनरेंद्रचक्रै-
ध्येयं शिवं सकलभव्यजनैःसुबन्ध्यम् ३
नारिङ्गपूगकदलीफलनारिकेलैः
सोऽहंयजे वरफलैर्वरसिद्धचक्रम् ॥८॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥८॥

गन्धाढ्यं सुपयो मधुव्रतगणैः सङ्गं वरं चन्दनम्
पुष्पोघं विमलं सदक्षतचतं रम्यं चरुं दीपकं ।
धूपं गन्धयुतं ददामि विविधं श्रेष्ठं फलं लब्धये
सिद्धानां युगपत्क्रमाय विमलं सेनोत्तरं वांछितं

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥९॥

ज्ञानोपयोगविमलं विशदात्मरूपम्
सूक्ष्मस्वभावपरमम् यदनन्तवीर्यम् ।
कर्मौघकक्षदहनं सुखशस्यवीजम्
वन्दे सदा निरुपमं वरसिद्ध चक्रम् ॥१०॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥१०॥

त्रैलोक्येश्वरवन्दनीयचरणाः प्रापुः श्रियं शाश्वतीं । यानाराध्य निरुद्धचण्डमनसः सन्तोपि तीर्थंकराः । सत्सम्यक्त्वविबोधवीर्य्यविशदाऽव्याबाधताद्यैर्गुणै—र्युक्तांस्तानिह तोष्टवीमि सततं सिद्धान् विशुद्धोदयान् ॥११॥

(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अथ जयमाला ।

विराग सनातन शान्त निरंश । निरामय निर्भय निर्मल हंस । सुधाम विबोधनिधान विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ विदूरितसंसृतभावनिरंग । समामृतपूरित देव विसंग ॥ अवन्ध कषायविहीन विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥२॥ निवारितदुष्कृतकर्मविपाश । सदामलकेवलकेलिनिवास॥ भवोदधिपारग शांत विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ३ ॥ अनन्तसुखामृतसागर धीर । कलङ्करजोमलभूरिसमीर ॥ विखण्डितकाम विराम विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ४ ॥ विकारविवर्जित तर्जितशोक विबोधसुनेत्रविलोकितलोक ॥ विहार विराव विरङ्ग विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥५॥ रजोमलखेदविमुक्त विगात्र । निरंतर नित्य सुखा मृतपात्र ॥ सुदर्शनराजित नाथ विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ६ ॥ नरामरवन्दित निर्मल भाव । अनन्तमुनीश्वरपूज्यविहाव ॥ सदोदय विश्व

महेश विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥७॥ विदंभ वितृष्ण विदोष विनिद्र । परापर शंकर सार वितन्द्र ॥ विकोप विरूप विशंक विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥८॥ जरामरणोज्झित वीतविहार । विचिन्तित निर्मल निरहंकार ॥ अचिन्त्यचरित्र विदर्प विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥९॥ विवर्ण विगंध विमान विलोभ । विमाय विकाय विशब्द विशोभ ॥ अनाकुल केवल सर्व विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ १० ॥

घत्ता

असमसमयसारं चारुचैतन्य चिह्नं परपरणतिमुक्तं पद्मनन्दीन्द्रवन्द्यम् ॥ निखिलगुणनिकेतं सिद्धचक्रं विशुद्धं स्मरति नमति यो वा स्तौति सोऽभ्येति मुक्तिम् ॥११॥

ओं ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

अडिल्ल छंद ।

अविनाशी अविकारपरमरसधाम हो ।
समाधान सर्वज्ञ सहज अभिराम हो ॥
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध अनादि अनंत हो ।
जगतशिरोमणि सिद्ध सदा जयवंत हो ॥
ध्यानअगनिकर कर्म कलंक सबै दहे ।
नित्य निरंजनदेव सरूपी हो रहे ॥
ज्ञायकके आकार ममत्वनिवारिकें ।
सो परमातम सिद्ध नमूं सिर नायकें ॥

दोहा ।

अविचलज्ञानप्रकाशतैं, गुण अनन्तकी खान ।
ध्यान धरै सो पाइये, परमसिद्ध भगवान ॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

समुच्चयचतुर्विंशतिजिनपूजा ।

छंद कवित्त ।

वृषभ अजित सम्भव अभिनंदन, सुमति पदम सुपास जिनराय । चन्द पुहुप शीतल श्रेयांस नमि, वासपूज्य पूजितसुरराय ॥ विमल अनन्त धरम जस उज्ज्वल, शांति कुंथु अर मल्लि मनाथ । मुनिसुव्रत नमि नेमि पासप्रभु, वर्द्धमान पद पुष्प चढ़ाय ॥१॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतिजिनसमूह अत्र अवतर, अवतर । संवौषट् । ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतिजिनसमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतिजिनसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ॥

अष्टक ।

चाल द्यानतरायकृत नंदीश्वरद्वीपाष्टककी

मुनिमनसम उज्ज्वल नीर, प्रासुक गंध भरा ।

भरि कनककटोरी धीर, दीनों धार धरा ॥
चौवीसौ श्रीजिनचन्द, आनन्दकन्द सही ।
पदजजत हरत भवफन्द, पावत मोक्षमही ॥१॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥

गोशीर कपूर मिलाय, केशररङ्ग भरो ।
जिनचरनन देत चढ़ाय, भवआताप हरो ॥
चौवीसौ० ॥२॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यो भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामि० ॥

तन्दुल सित सोमसमान, सुन्दर अनियारे ।
मुकताफलको उनमान, पुञ्ज धरों प्यारे ॥
चौवीसौ० ॥३॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामि० ॥

वर कञ्ज कदम्ब करण्ड, सुमन सुगन्ध भरे ।
जिन अग्र धरौं गुनमण्ड, कामकलङ्क हरे ॥
चौवीसौ० ॥४॥

श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यः कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामि० ॥

मनमोदनमोदक आदि, सुन्दर सद्य बने ।
रसपूरित प्रासुक स्वाद, जजत छुधादि हने ॥
चौबीसौं०॥५॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व-पामीति स्वाहा ॥

तमखन्डन दीप जगाय, धारों तुम आगैं ।
सब तिमिरमोह छै जाय, ज्ञानकला जागैं ॥
चौबीसौं० ॥६॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि० ।

दशगंध हुताशनमाहिं, हे प्रभु खेवत हों ।
मिस धूम करम जरि जांहि, तुम पद सेवत हों ॥
चौबीसौं० ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं नि० ॥

शुचि पक्व सरस फल सार, सब रितुके ल्यायौ ।
देखत दृगमनको प्यार, पूजत सुख पायौ ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि० ॥

जलफल आठों शुचि सार, ताको अर्घ करों ।
तुमको अरपों भवतार, भवतरि मोक्ष वरों ॥
चौबीसौं० ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिचतुर्विंशतितीर्थङ्करेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं ॥

जयमाला ।

दोहा ।

श्रीमत तीरथनाथपद, माथ नाय हितहेत ।
गावों गुणमाला अबे, अजरअमरपद देत ॥ १ ॥

छंद घत्तानंद ।

जयभवतम भंजन जनमनकंजन, रंजनदिनमनि स्वच्छकरा ।
शिवमगपरकाशक अरिगननाशक, चौवीसों जिनराज वरा ॥ २ ॥

छंद पद्धरी ।

जय रिषभ देव रिषिगन नमंत । जय अजित जीत वसुअरि तुरंत । जय संभव भवभय करत चूर । जय अभिनंदन आनंदपूर ॥३॥ जय सुमति सुमतिदायक दयाल । जय पद्म पद्मद्युति तन रसाल ॥ जय जय सुपास भवपाशनाश । जय चंद चंदतनदुतिप्रकाश ॥ ४ ॥ जय पुष्पदंत दुतिदंत सेत । जय शीतल शीतलगुननिकेत ॥ जय श्रेयनाथ नुतसहसभुज्ज जय वासवपूजित वासु पुज्ज ॥ ५ ॥ जय विमल विमल पददेनहार । जय जय अनंत गुनगन अपार ॥ जय धर्म धर्म शिवशर्म देत । जय शांति शांति पुष्टी करेत ॥ ६ ॥ जय कुंथु कुंथवादिकरखेय । जय अर जिन वसुअरि छय करेय ॥ जय मल्लि मल्ल हतमोहमल्ल । जय मुनिसुव्रत व्रतसल्लदल्ल ॥ ७ ॥ जय नमि नित वासवनुत सपेम । जय नेमनाथ वृषचक्रनेम ॥ जय पारसनाथ अनाथनाथ । जय वर्द्धमान शिवनगरसाथ ॥ ८ ॥

घत्तानंद छंद

चौवीस जिनंदा आनंदकंदा पापनिकंदा सुख-
कारी। तिनपद जुगचंदा उदय अमंदा, वासव-
वंदा हितधारी ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिचतुर्विंशतिजिनेभ्यो महार्घं निर्वपामीति
स्वाहा ॥

भुक्तिमुक्तिदातार, चौवीसौ जिनराज वर।
तिनपद मनवचधार, जो पूजैं सो शिव लहैं॥१०॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्रीचन्द्रप्रभजिनपूजा।

छप्पय।

चारुचरन आचरन, चरन चितहरनचिह्नचर।
चंदचंदतनचरित, चंदथल चहत चतुर नर॥
चतुक चंड चकचूरि, चारि चिदचक्र गुनाकर।
चंचल चलितसुरेश, चूलनुत चक्र धनुरहर॥
चरअचरहितू तारनतरन, सुनत चहकि चिर-
नंद शुचि। जिनचंदचरन चरच्यो चहत, चित-
चकोर नचि रच्चि रुचि॥ १ ॥

दोहा ।

धनुष डेढसौ तुंग तन, महासेन नृपनंद ।
मातुलच्छमनाउर जये, थापों चंदजिनंद ॥ २ ॥

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।
ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।
ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्

अष्टक ।

चाल नंदीश्वराष्टककी अष्टपदी तथा होलीकी चालमें ।

गंगाहृदनिरमलनीर, हाटकभृंगभरा ।
तुम चरन जजों वरवीर, मेटो जनमजरा ॥
श्रीचंदनाथदुति चंद, चरनन चंद लगै ।
मनवचतन जजत अमंद, आतमजोति जगै ॥१ ॥

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं ।

श्रीखंडकपूर सुचङ्ग केशररंग भरी ।
घसि प्रासुकजलके संग, भवआताप हरी ॥ श्री०

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामि ।

तंदुल सित सोमसमान, सोले अनियारे ।
दिय पुंज मनोहर आन, तुमपदतर प्यारे । श्री०

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्ताय अक्षतं निर्वपामि ।

सुरद्रुमके सुमन सुरंग, गंधित अलि आवै ।
तासों पद पूजत चंग, कामविथा जावै ॥ श्री०
ओं ह्रीं श्रीचंद्रप्रभजिनेंद्राय कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्व०

नेवज नानापरकार, इन्द्रियबलकारो ।
सो लै पद पूजों सार, आकुलताहारो ॥ श्री०
ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व० ।

तमभञ्जन दीप सँवार, तुमढिग धारतु हों ।
मम तिमिरमोह निरवार, यह गुन धारतु हों । श्री
ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्व०

दशगन्धहुतासनमाहि, हे प्रभु खेवतु हौं ।
मम करम दुष्ट जारि जाँहि, यातैं सेवतु हौं । श्री०
ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति

अति उत्तमफल सु मँगाय, तुम गुनगावतु हौं ।
पूजों तनमन हरषाय, विघन नशावतु हों । श्री०
ओं ह्रीं श्रीचंद्रप्रभजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्व०

सजि आठो दरब पुनीत, आठों अंग नमों ।
पूजों अष्टमजिन मीत, अष्टम अवनि गमों । श्री०
ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति ।

पञ्चकल्याणक ।

छंद तोटक (वर्ण १२)।

कलि पञ्चमचैत सुहात अली। गरभागममंगल मोद भली ॥ हरि हर्षित पूजत मातु पिता। हम ध्यावत पावत शर्मसिता ॥ १ ॥

ओं ह्रीं चैतकृष्णपंचम्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

कलि पौष इकादशि जन्म लयो। सब लोकविषैं सुखथोक भयो ॥ सुरईशजजें गिरशीश तबै। हम पूजत हैं नुतशीस अबै ॥ २ ॥

ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां, जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

तप दुद्धर श्रीधर आप धरा। कलिपौष इग्यारसि पर्व वरा ॥ निजध्यानविषैं लवलीन भये। धनि सो दिन पूजत विघ्न गये ॥३॥

ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां निःक्रमणमहोत्सवमण्डिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥३॥

वर केवलभानु उद्योत कियो। तिहुं लोकतणों भ्रम मेट दियो ॥ कलिफाल्गुणसप्तमि इन्द्र जजे ॥ हम पूजहिं सर्व कलंक भजे ॥४॥

ओं ह्रीं फाल्गुनकृष्णसप्तम्यां केवलज्ञान मंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

सित फाल्गुण सप्तमि मुक्ति गये॥ गुणवंत अनंत अबाध भये॥ हरि आय जजे तित मोदधरे॥ हम पूजत ही सब पाप हरे ॥५॥

ओं ह्रीं फाल्गुनशुक्लसप्तम्यां मोक्षमङ्गलमण्डिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला।

दोहा।

हे मृगांकअंकितचरण, तुम गुण अगम अपार।
गणधरसे नहिं पार लहिं तौ को वरनत सार।१।
पै तुम भगति हिये मम प्रेरै अति उमगाय।
तातैं गाऊं सुगुण तुम तुमही होउ सहाय ॥२॥

छन्द पद्धरि (१६ मात्रा)

जय चन्द्र जिनेन्द्र दयानिधान। भवकानन हानन दवप्रमान॥ जय गरभजनममंगल दिनंद। भवि जीवविकाशन शर्मकन्द॥ ३ ॥ दश लच्छपूर्वकी आयु पाय। मनवांछित सुख भोगे जिनाय॥ लखि कारण है जगतैं उदास। चिं-

त्यों अनुप्रेक्षा सुखनिवास ॥४॥ तित लौकांतिक बोध्यो नियोग। हरि शिविका सजि धरियो अभोग ॥ तापै तुम चढ़ि जिनचन्द्राय। ताछिनकी शोभाको कहाय ॥५॥ जिन अंग सेत सित चमर ढार। सित छत्र शीस गलगुलक-हार ॥ सित रतनजड़ित भूषण विचित्र। सित चन्द्रचरण चरचैं पवित्र ॥६॥ सित तन द्युति नाकाधीश आप। सित शिविका कांधे धरि सुचाप ॥ सित सुजस सुरेश नरेश सर्व। सित चितमें चिन्तत जात पर्व ॥७॥ सित चन्दनगरतें निकसि नाथ। सित बनमें पहुंचे सकल-साथ ॥ सितशिलाशिरोमणि स्वच्छछांह। सित तप तित धारयो तुम जिनाह ॥८॥ सित पयको पारण परमसार। सित चन्द्रदत्त दीनों उदार ॥ सित करमें सो पयधार देत। मानों बांधत भवसिन्धुसेत ॥९॥ मानों सुपुण्यधारा प्रतच्छ। तित अचरज पनसुर किय ततच्छ ॥ फिर जाय गहन सित तपकरंत। सित केवलज्योति जग्यो

अनंत ।१०। लहि समवसरणरचना महान। जाके देखत सब पापहान ॥ जहँ तरु अशोक शोभै उतंग। सब शोकतनो चूरै प्रसंग ॥ ११॥ सुर सुमनवृष्टि नभतैं सुहात। मनु मन्मथ तज हथियार जात ॥ वानी जिन मुखसौं खिरत सार। मनु तत्त्वप्रकाशन मुकुर धार ॥१२। जहँ चौसठ चमर अमर ढुरंत। मनु सुजस मेघ झरि लगिय तंत। सिंहासन है जहं कमल जुक्त। मनु शिवसरवरको कमलशुक्त ॥१३॥ दुंदुभि जितवाजत मधुर सार। मनु करमजीतको है नगार ॥ शिर छत्र फिरैं त्रय श्वेत वर्ण। मनु रतन तीन त्रयताप हर्ण ॥१४॥ तनप्रभातनों मंडल सुहात। भवि देखत निजभव सात सात ॥ मनु दर्पणद्युति यह जगमगाय। भविजन भव मुख देखत सुआय ॥१५॥ इत्यादि विभूति अनेक जान। वाहिज दीसत महिमा महान ॥ ताको वरणत नहिं लहत पार। तौ अन्तरंगको कहै सार ॥१६॥ अनअंत गुणनिजुत करि विहार।

धरमोपदेश दे भव्य तार ॥ फिर जोगनिरोधि अघाति हान। सम्मेदथकी लिय मुकतिथान ॥१७॥ वृन्दावन वन्दत शीश नाय। तुम जानत हो मम उर जु भाय ॥ तातैं का कहौं सु वार वार। मनवांछित कारज सार सार ॥१८॥

छंद घत्ता।

जय चन्दजिनन्दा आनंदकन्दा, भवभयभंजन राजैं हैं। रागादिकद्वंदा हरि सब फन्दा, मुकतिमांहि थिति साजैं हैं ॥१९॥

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

छन्द चौबोला।

आठों दरब मिलाय गाय गुण, जो भविजन जिनचन्द जजैं। ताकैं भवभवके अघ भाजैं, मुक्तसारसुख ताहि सजैं ॥२०॥ जमके त्रास मिटैं सब ताके, सकल अमंगल दूर भजैं। वृन्दावन ऐसो लखि पूजत, जातैं शिवपुरि राज रजैं ॥२१॥

इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्।

इति श्रीचन्द्रप्रभ जिनपूजा समाप्त।

अथ शेष अर्घ ।

विद्यमान तीर्थंकरोंका अर्घ ।

उदकचन्दनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनराजमहं यजे

ओं ह्रीं सीमंधरयुगमंधरबाहुसुबाहुसंजातस्वयंप्रभवृषभाननअनंतवीर्यसूरप्रभविशालकीर्तिवज्रधरचंद्राननचंद्रबाहुभुजंगमईश्वरनेमिप्रभवीरसेनमहाभद्रदेवयशअजितवीर्येतिविंशतिविद्यमानतीर्थंकरेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

अकृत्रिमचैत्यालयोंका अर्घ ।

कृत्याकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान्नित्यं त्रिलोकीगतान् वन्दे भावनव्यंतरान्द्युतिवरान्कल्पामरान्सर्वगान् । सद्गंधाक्षतपुष्पदामचरुकैर्दीपैश्च धूपैः फलर्, नीराद्यैश्च यजे प्रणम्य शिरसा दुष्कर्मणां शांतये ॥२॥

ओं ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयसंबंधिजिनबिंबेभ्योऽर्घ्यं नि० ।

सिद्धोंका अर्घ ।

गंधाढ्यं सुपयो मधुव्रतगणैः संगं वरं चन्दनं
पुष्पौघं विमलं सदक्षतचयं रम्यं चरुं दीपकं ।
धूपं गन्धयुतं ददामि विविधं श्रेष्ठं फलं लब्धये
सिद्धानां युगपत्क्रमाय विमलं सेनोत्तरं वांछितं ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

सोलहकारणका अर्घ।

उदकचन्दनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनहेतुमहं यजे

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो अर्घ्यं निर्व०।

दशलक्षण धर्मका अर्घ।

उदकचन्दनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः
धवलमङ्गलगानरवाकुले जिनगृहे जिनधर्ममहं यजे

ओं ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्भवोत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्य-संयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यदशलाक्षणिकधर्मेभ्योऽर्घ्यं नि०।

रत्नत्रयका अर्घ॥

उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः
धवलमङ्गलगानरवाकुले जिनगृहे जिनरत्नमहं यजे ॥६॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदश-प्रकारसम्यक्चारित्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥६॥

—:०:—

शांतिपाठ, विसर्जन भाषा ।

चौपाई १६ मात्रा ।

शांतिनाथ मुख शशि उनहारी । शीलगुणाव्रतसंयमधारी ॥ लखन एक सौ आठ विराजैं । निरखत नयन कमलदल लाजैं ॥१॥ पञ्चम चक्रवर्तिपदधारी । सोलम तीर्थंकर सुखकारी ॥ इन्द्रनरेंद्रपूज्य जिननायक । नमौं शांतिहितशांति विधायक ॥२॥ दिव्य विटप पहुपनकी वरषा । दुंदुभि आसन वाणी सरसा॥छत्रचमर भामण्डल भारी । ये तुव प्रातिहार्य मनहारी ।३।शांति जिनेश शांति सुखदाई । जगतपूज्य पूजौं शिरनाई । परमशांति दीजै हम सबको । पढैं तिन्हैं, पुनि चार संघको॥ ४ ॥

वसंततिलका ।

पूजैं जिन्हैं मुकुट हार किरीट लाके ।
इन्द्रादिदेव अरु पूज्य पदाब्ज जाके ॥
सो शांतिनाथ वरवंशजगत्प्रदीप ।
मेरे लिये करहिं शांति सदा अनूप ॥५॥

इन्द्रवज्रा ।

संपूजकोंको प्रतिपालकोंको ।
यतीनको औ यतिनायकोंको ॥
राजा प्रजा राष्ट्र सुदेशको ले ।
कीजे सुखी हे जिन शांतिको दे ॥६॥

स्रग्धरा ।

होवै सारी प्रजाको सुख बलयुत हो धर्मधारी नरेशा । होवै वर्षा समैपै तिल भर न रहै व्याधियोंका अन्देशा ॥ होवै चोरी न जारी सुसमय वरतै हो न दुष्काल भारी । सारे ही देश धारैं जिनवर वृषको जो सदा सौख्यकारी ॥७॥

दोहा ।

घातिकर्म जिन नाशकरि पायो केवलराज ।
शांति करो सब जगतमें वृषभादिक जिनराज ॥

मंदाक्रांता ।

शास्त्रोंका हो पठन सुखदा लाभ सत्संगतीका । सद्वृत्तोंका सुजस कहके, दोष ढांकूं सभीका ॥ बोलूं प्यारे बचन हितके, आपका

रूप ध्याऊं। तौलौं सेऊं चरन जिनके मोक्ष-जौंलौं न पाऊं ॥९॥

आर्य्या।

तवपद मेरे हियमें ममहिय तेरे पुनीत चरणोंमें। तवलों लीन रहों प्रभु, जवलों पाया न मुक्तिपद मैंने ॥१०॥ अक्षरपद मात्रासे, दूषित जो कछु कहा गया मुझसे। क्षमा करो प्रभु सो सब, करुणा करि पुनि छुड़ाउ भवदुखसे ॥११॥ हे जगवन्धु जिनेश्वर, पाऊं तव चरण शरण बलि-हारी। मरण समाधि सुदुर्लभ, कर्मोंका क्षय सुवोध सुखकारी ॥१२॥

परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्।

अथ विसर्जनपाठ।

दोहा।

बिनजाने वा जानके, रही चूक जो कोय।
तुव प्रसादतैं परमगुरु, सो सब पूरन होय ॥१॥
पूजनविधि जान्यों नहीं, नहिं जान्यों आह्वान।
और विसर्जन हू नहीं, क्षमा करो भगवान ॥२॥
मंत्रहीन धनहीन हूं, क्रियाहीन, जिनदेव।

क्षमा करहु राखहु मुझे, देहु चरणकी सेव ॥३॥
आये जो जो देवगन, पूजे भक्तिप्रमान।
सो अब जावहु कृपाकर, अपने अपने थान ॥४॥

समाप्त ॥

अथ भाषा स्तुतिपाठ।

तुम तरन तारन भवनिवारन, भविकमन-आनंदनो। श्रीनाभिनंदन, जगत वंदन, आदिनाथ निरंजनो ॥ १ ॥ तुम आदिनाथ अनादि सेऊं, सेय पदपूजा करूं। कैलाशगिरि-पर रिषभजिनवर, पदकमल हिरदै धरूं ॥ २ ॥ तुम अजितनाथ अजीत जीते, अष्टकर्म महाबली। यह विरद सुनकर सरन आयो, कृपा कीजे नाथजी ॥ ३ ॥ तुम चंद्रवदन सुचन्द्रलच्छन, चंद्रपुरी परमेश्वरो। महासेननंदन जगत वंदन चन्द्रनाथ जिनेश्वरो ॥ ४ ॥ तुम शांति पांच कल्याण पूजों, शुद्ध मनवचकाय जू। दुरभिक्ष चोरी पाप नाशन, विघन जाय पलाय जू ॥ ५ ॥ तुम बालब्रह्म विवेकसागर भव्यकमल विका-

सनो। श्रीनेमिनाथ पवित्र दिनकर, पापतिमिरविनाशनो ॥ ६ ॥ जिन तजो राजुल राज कन्या, कामसैन्या वश करी। चारित्ररथ चढ़ि भये दूलह, जाय शिवरमणी वरी ॥७॥ कंदर्प दर्प सुसर्प लच्छन, कमठ शट निर्मद कियो। अश्वसेननंदन जगतवंदन, सकल संघ मंगल कियो ॥८॥ जिन धरी बालकपणैं दीक्षा, कमठमानविदारकैं श्रीपार्श्वनाथ जिनेंद्रके पद, मैं नमों शिर धारकैं ॥ ९ ॥ तुम कर्मघाता मोक्षदाता, दीन जानि दया करो। सिद्धार्थनंदन जगत वंदन, महावीर जिनेश्वरो ॥ १० ॥ त्रय छत्र सोहैं सुर नर मोहैं, वीनती अवधारिये। कर जोड़ि सेवक वीनवै, आवागमन निरवारियें ॥ ११ ॥ अब होउ भव भव स्वामि मेरे, मैं सदा सेवक रहों। कर जोरि यों वरदान मांगों, मोक्षफल जावत लहों ॥१२॥ जो एकमाहीं एक राजै, एकमाहिं अनेकनो। इक अनेककी नहीं संख्या, नमो सिद्धनिरंजनो ॥ १३ ॥

चौपाई ।

मैं तुम चरणकमलगुण गाय । बहुविधि भक्ति करी मन लाय ॥ जनम जनम प्रभु पाऊं तोहि । यह सेवाफल दीजे मोहि ॥ १४ ॥ कृपा तिहारी ऐसी होय । जामन मरन मिटावो मोय ॥ वार बार मैं विनती करूं । तुम सेवत भवसागर तरूं नाम लेत सब दुख मिट जाय । तुम दर्शन देख्यो प्रभु आय । तुम हो प्रभु देवनके देव । मैं तो करूं चरण तव सेव ॥ १६ ॥ मैं आयो पूजनके काज । मेरो जनम सफल भयो आज । पूजा करकैं नवाऊं शीश । मुझ अपराध छमहु जगदीस ॥ १७ ॥

दोहा ।

सुख देना दुख मेटना, यही तुम्हारी बान ।
मो गरीबकी वीनती सुन लीज्यो भगवान ॥१८॥
जैसी महिमा तुमविषै, और धरे नहिं कोय । जो सूरजमें ज्योति है तारनमें नहिं सोय ॥ २०॥
नाथ तिहारे नामतैं, अघ छिनमाहिं पलाय ।
ज्यों दिनकर परकाशतैं, अंधकार विनशाय ।२१।

बहुत प्रशंसा क्या करूं, मैं प्रभु बहुत अजान ।
पूजा विधि जान्यो नहीं, सरन राखि भगवान ॥

इति भाषास्तुतिपाठ समाप्त ॥

अथ कल्याणमंदिर स्तोत्र ।

दोहा

परमज्योति परमात्मा, परमज्ञान परवीन ।
वन्दूं परमानन्द मय, घट घट अन्तर लीन ॥१॥

चौपाई ।

निर्भय करन परम परधान । भवसमुद्रजल तारन जान ॥ शिवमन्दिर अघहरण अनिंद । बंदूं पास चरण-अरविंद ॥ २ ॥ कमठमानभञ्जन वरवीर । गरिमा सागर गुणगंभीर ॥ सुरगुरु पार लहै नहिं जास । मैं अजान लपूं जस तास ॥ ३ ॥ प्रभुस्वरूप अति अगम अथाह । क्यों हमसे यह होय निवाह ॥ ज्यों दिनअन्ध-उलूको पोत । कहि न सकै रविकिरण उद्योत ।४। मोहहीन जानै मनमाहिं । तोहु न तुम गुण वरने जाहिं ॥ प्रलयपयोधि करै जलबोन । प्रग-

टहिं रतन गिनै तिहिं कौन ॥ ५ ॥ तुम असंख्य निर्मलगुण खानि । मैं मति हीन कहूं निजवानि ॥ ज्यों वालक निज वांहि पसार । सागर परमित कहै विचार ॥६॥ ये योगींद्रकरहिं तप खेद । तऊ न जानहिं तुम गुण भेद ॥ भक्ति भाव मुझ मन अभिलाष । ज्यों पंछी वोले निज भाष ॥ ७ ॥ तुम जस महिमा अगम अपार । नाम एक त्रिभुवन आधार ॥ आवै पवन पद्मसर होय । ग्रीषम तपत निवारै सोय ॥८॥ तुम आवत भविजन मनमाहिं । कर्मनिवंध शिथल ह्वै जाहिं ॥ ज्यों चंदनतरु वोलहिं मोर । डरहिं भुजंग लगे चहुं-ओर ॥ ९ ॥ तुम निरखत जन दीन दयाल । संकटतैं छूटै ततकाल ॥ ज्यों पशु घेर लेहिं निशि चोर । ते तज भागहिं देखत भोर ॥ १० ॥ तू भविजन तारक किम होहि । ते चित धोर तिरहिं ले तेहि ॥ यह ऐसे कर जान स्वभाव । तिरहिं मसक ज्यों गर्भित वाव ॥ ११ ॥ जिहं सव देव किये वश वाम । ते छिनमैं जीत्यो सो काम ॥

ज्यो जल करै अगनि कुल हान। बडवानल पीवै सो पान ॥१२॥ तुम अनंत गरवा गुण लिये। क्योंकर भक्ति धरों निज हिये॥ ह्वै लघुरूप तिरहिं संसार। यह प्रभु महिमा अकथ अपार ॥ १३ ॥ क्रोध निवार कियो मन शांत। कर्म सुभट जीते किहिं भांति ॥ यह पटतर देखउ संसार। नील विरछ ज्यों दहै तुसार॥१४॥मुनिजन हिये कमल निज टोहि। सिद्धरूपसम ध्यावैं तोहि॥ कमल करणिका विन नहिं और। कमलबीज उपजनकौ ठौर।१५।जव तुव ध्यान धरै मुनि कोय। तव विदेह परमातम होय॥ जैसे धातुशिला तनु त्याग। कनक स्वरूप धवैं जब आग ॥१६॥ जाके मन तुम करहु निवास। विनशि जाय क्यों विग्रह तास॥ ज्यों महंत विच आवै कोय। विग्रह मूल निवारै सोय ॥१७॥ करहिं विबुध जे आतम ध्यान। तुम प्रभावतें होय निदान॥ जैसे नीर सुधा अनुमान। पीवत विष विकारकी हानि ॥ १८ ॥ तुम भगवंत विमल गुण लीन।

समलरूप मानहिं मतिहीन ॥ ज्यों पीलिया रोग
दृग गहै। वर्ण विवर्ण शंखसों कहै ॥ १६ ॥

दोहा।

निकटरहत उपदेश सुन, तरुवर भयो अशोक।
ज्यों रवि ऊगत जीव सब, प्रगट होत भुविलोक ॥
सुमन बृष्टि जो सुर करहिं, हेठ बीठ मुख सोइ।
त्यों तुम सेवत सुमनजन, बंध अधोमुख होइ ॥
उपजी तुम हिय उदधितैं, बानी सुधा समान।
जिहं पीवत भवि जन लहै, अजर अमर पदथान ॥
कहहिं सार तिहुं लोकको, यह सुरचामर दोय।
भाव सहित जो जिन नमें, तस गति ऊरध होय॥
सिंघासन गिरमेरु सम, प्रभुधुनि गरजत घोर।
श्यामसुतनुघनरूपलखि, नाचतभविजन मोर ॥
छवि हत होत अशोकदल, तुम भामंडल देख।
बीतरागके निकट रह, रहत न राग विशेख ॥
सीख कहैं तिहुं लोकको, यह सुरदुंभिनाद।
शिवपथसारथिवाह जिन, भजहु तजहु परमाद ॥
तीन छत्र त्रिभुवन उदित, मुक्तागण छबि देत।

त्रिविधरूप धर मनहु शशि, सेवत नखतसमेत ॥

पद्धरि छन्द ।

प्रभुतुम शरीर दुतिरतन जेम। परताप पुंज जिमि शुद्ध हेम ॥ अति धवलसुजश रूपासमान। तिनके गढतीन विराजमान ॥ २७ ॥ सेवहिं सुरेंद्र कर नमत भाल, तिन सीसमुकुट तज देहिंमाल। तुम चरण लगत लहलहै प्रीति, नहिं रमहिं और जनसुमन रीति ॥ २८ ॥ प्रभुभोगविमुख तनकर्मदाह, जनपार करत भवजलनिवाह ॥ ज्यों माटी कलश सुपक्व होय, ले भार अधोमुख तिरहि तोय ॥२९॥ तुम महाराज निर्धन निराश। तज विभव विभव सब जग प्रकाश ॥ अक्षर-स्वभाव सुलिखै न कोय, महिमा अनंत भगवंत सोय ॥३०॥ कोप्यो सुकमठ निज वैर देख, तिनकरी धूल वरषा विशेख ॥ प्रभुतुम छाया नहिं भई हीन, सो भयो पापि लंपट मलीन ॥ ३१ ॥ गरजंत घोर घन अंधकार, चमकंत बिज्जु जल

मुशलधार ॥ वरषंत कमठ धर ध्यान रुद्र, दुस्तर करता निजभवसमुद्र ॥ ३२ ॥

(वस्तुछंद)

मेघमाली मेघमाली आप बलफोरि, भेजे तुरत पिशाच गण, नाथपास उपसग्ग कारण । अग्नि-जाल झलकंत मुख, धुनि करत जिमि मत्तवा-वारण । कालरूप विकराल तन, मुंडमाल तिहि कंठ । ह्वै निशङ्क वह रङ्क निज, करै कर्म दिढ़ गंठ ॥ ३४ ॥

चौपाई ।

जो तुमचरण कमल तिहुंकाल । सेवहिं तज माया जंजाल ॥ भावभगति मन हरष अपार । धन्य धन्य जग तिन अवतार ॥ ३५ ॥ भवसागरमहं फिरत अजान । मैं तुम सुयश सुन्यो नहिं कान । जो प्रभुनाममंत्र मन धरै । तासों विपतिभुजंगम डरै ॥ ३६ ॥ मनवांछित फल जिनपदमाहिं । मैं पूरब भव पूजे नाहिं ॥ मायामगन फिरयो अज्ञान । करहिं रंकजन मुझ अपमान ॥ ३७ ॥

मोहतिमिर छायो दृग मोहि। जन्मांतर देख्यो नहिं तोहि ॥ तौ दुर्जन मुझ संगति गहैं। मरम छेदके कुवचन कहैं ॥ ३८ ॥ सुन्यो कान यश पूजे पाय। नैनन देखो रूप अघाय ॥ भक्ति हेतु न भयो चित चाव। दुखदायक किरिया विनभाव ॥ ३९ ॥ महाराज सरनागत पाल। पतित उधारण दीनदयाल ॥ सुमिरण करहुं नाय निज शीश। मुझ दुख दूर करहु जगदीश ॥ ४० ॥ कर्मनिकन्दन-महिमासार। अशरणशरण सुयश विस्तार ॥ नहिं सेये प्रभु तुमरे पांय। तो मुझ जन्म अकारथ जाय ॥ ४१ ॥ सुरगणवंदित दया निधान। जगतारण जगपति जगजान ॥ दुख सागरतैं मोहि निकासि। निर्भयथान देहु सुख रासि ॥४२॥ मैं तुम चरण कमल गुणगाय। बहु विधि भक्ति करी मन लाय ॥ जनम जनम प्रभु पाऊं तोहि। यह सेवा फल दीजै मोहि ॥४३ ॥

दोधकांत वेसरीछन्द छप्पय।

इहि विधि श्रीभगवंत, सुयश जे भवि जन भा-

षहिं। ते निज पुण्य भण्डार, संचि चिर पाप प्र-
णासहिं॥ रोम रोम हुलसंति, अंग प्रभु गुण
मन ध्यावहिं। स्वर्गसंपदा भुंज वेग पंचम गति
पावहिं॥ यह कल्याणमन्दिर कियो, कुमुदचन्द्र-
की बुद्धि। भाषा कहत बनारसी, कारण समकित
शुद्धि।

इति कल्याणमन्दिर समाप्त॥

अथ भूधरकृत स्तोत्र।

दोहा।

वादिराज मुनिराजके, चरण कमल चितलाय।
भाषा एकीभावकी, करूं स्वपरसुखदाय॥१॥

(छन्द)

जो अति एकीभाव भयो मानो अनिवारी।
सो मुझ कर्मप्रबंध करत भव भव दुख भारी॥
ताहि तिहारी भक्ति जगत रवि ज्यों निरवारे।
तो अब और कलेश कौन सो नाहिं विदारे।१।
तुम जिन ज्योतिस्वरूप दुरितअंधियार निवारी।
सो गणेश गुरु कहे तत्वविद्याधनधारी॥

मेरे चितघर माहिं बसो तेजोमय यावत ।
पापतिमिर आकाश तहांसो क्योंकर पावत ॥२॥
आनंद आंसू वदन धोय तुमसों चित साने ।
गदगद सुरसों सुयशमंत्र पढ़ पूजा ठाने ॥
ताके बहुविधि व्याधिव्याल चिरकाल निवासी ।
भाजैं थानक छोड़ देहबांबइके वासी ॥ ३ ॥
दिवितैं आवनहार भये भवि-भाग उदयबल ।
पहलेही सुर आय कनकमय कीय महीतल ॥
मनगृहध्यानदुवार आय निवसौ जगनामी ।
जो सुवरण तनकरो कौन यह अचरजस्वामी ॥४॥
प्रभु सब जगके विना हेतु बांधव उपकारी ।
निरावरन सर्वज्ञ शक्ति जिनराज निहारी ।
भक्तिरचित ममचित्तसेज नित वास करोगे ।
मेरे दुखसंताप देख किमि धीर धरोगे ॥ ५ ॥
भवबनमें चिरकाल भ्रम्यो कछु कहिय न जाई ।
तुम थुतिकथापियूष-वापिका भागन पाई ॥
शशि तुषार घनसार हार शीतल नहिं जा सम ।
करत न्हौन ता मांहि क्यों न भवताप बझै मम ॥

श्रीविहार परिवाह होत शुचिरूप सकल जग ।
कमल कनक आभाव सुरभि श्रीवास धरत पग ॥
मेरो मन सर्वंग परस प्रभुको सुख पावै ।
अब सो कौन कल्यान जो न दिनदिन ढिग आवै
भव तज सुखपद बसे काममद सुभट संहारे ।
जो तुमको निरखंत सदा प्रिय सदा तिहारे ॥
तुम वचनामृतपान भक्ति अंजुलिसों पीवैं ।
तिनै भयानक क्रूर रोग रिपु कैसे छीवैं ॥ ८ ॥
मानथंभ पाषाण आन पाषाण पटतर ।
ऐसे और अनेक रत्न दीखैं जग अन्तर ॥
देखत दृष्टि प्रमाण मानमद तुरत मिटावै ।
जो तुम निकट न होय शक्ति यह क्योंकर पावै ॥
प्रभुतन पर्वत परत पवन उरमैं निवहै है ।
तासौं ततछिन सकल रोग रजबाहिर ह्वै है ॥
जाके ध्यानाहूत बसो उरअम्बुज माहीं ।
कौन जगतउपकार करण समरथ सो नाहीं ॥
जनमजनमके दुःख सहे सब ते तुम जानो ।
किये मुझ हिये लगैं आयुधसे मानो ॥

तुम दयाल जगपाल स्वामि मैं सरण गही है।
जो कछु करनो होय करो परमाण वही है ॥११॥
मरण समय तुम नाम, मन्त्र जीवकतैं पायो।
पापाचारी स्वान प्रान तज अमर कहायो ॥
जो मणिमाला लेय, जपै तुम नाम निरन्तर।
इन्द्र सम्पदा लहै कौन संशय इस अन्तर ॥१२॥
जो नर निर्मल ज्ञान, मान शुचि चारित साधै।
अनवधि सुखकी सार भक्ति कूंची नहिं लाधै॥
सो शिव वांछक पुरुष मोक्षपट केम उघारै।
मोह मुहर दिढ करी, मोक्षमन्दिरके द्वारै ॥१३॥
शिवपुरकेरो पंथ, पाप तमसौं अति छायो।
दुखसरूप बहुकूप खाडसौं विकट बतायो ॥
स्वामी सुखसों तहां कौन जन मारग लागैं।
प्रभुप्रवचनमणिदीप जौनके आगैं आगैं ॥१४॥
कर्मपटलभू माहिं दबी आतमनिधि भारी।
देखतअतिसुख होय विमुखजन नाहिं उघारी ॥
तुम सेवक ततकाल ताहि निश्चय करधारै।
थुतिकुदालसों खोद बन्दभू कठिनविदारै ॥१५॥

स्यादवाद गिरिउपज मोक्ष सागरलों धाई ।
तुमचरणांबुज परस भक्तिगंगा सुखदाई ॥
मोचित निर्मल थयो न्होन रुचिपूरव तामैं ।
अब वह हो न मलीन कौन जिन संशय यामें ॥
तुम शिव सुखमय प्रगटकरत प्रभु चिंतन तेरो ।
मैं भगवान समान भाव यों वरतै मेरो ॥
यदपि झूठ है तदपि तृप्ति निश्चल उपजावै ।
तुमप्रसाद सकलङ्क जीव वांछितफल पावै ॥१७॥
वचन जलधि तुम देव सकल त्रिभुवनमें व्यापै ।
भङ्गतरंगिनि विकथवादमलमलिन उथापै ॥
मन सुमेरसौं मथैं ताहि जे सम्यकज्ञानी ।
परमामृतसों तृपत होहिं ते चिरलों प्रानी ॥१८॥
जो कुदेव छविहीन वसनभूषण अभिलाखैं ।
भयभीत होय सो आयुध राखैं ॥
तुम सुन्दर सर्वंग शत्रु समरथ नहिं कोई ।
भूषणवसनगदादि ग्रहण काहेको होई ॥१९॥
सुरपति सेवा करै कहा प्रभु प्रभुता तेरी ।
सो शलाघना लहै मिटै जगसौं जग फेरी ॥

तुम भव जलधिजिहाजं तोहि शिवकंत उचरिये ।
तुही जगत जनपाल नाथ थुतिकी थुति करिये ॥
वचनजाल जडरूप आप चिन्मूरति झांई ।
तातैं थुति आलाप नाहिं पहुंचैं तुम तांई ॥
तो भी निष्फल नाहिं भक्तिरसभीने वायक ।
संतनको सुरतरुसमान वांछितवरदायक ॥२१॥
कोप कभी नहिं करो प्रीति कबहूं नहिं धारो ।
अति उदास वेचाह चित्त जिनराज तिहारो ॥
तदपि आन जग वहै वैर तुम निकट न लहिये ।
यह प्रभुता जग तिलक कहां तुम बिन सरदहिये
सुरतिय गावें सुजश सर्वगति ज्ञानस्वरूपी ।
जो तुमको थिर होहि नमै भवि आनंदरूपी ॥
ताहि छेमपुर चलन बाट बांकी नहि होहै ।
श्रुतके सुमरनमांहि सो न कबहूं नर मोहै ॥२३॥
अतुल चतुष्टय रूप तुमें जो चितमें धारैं ।
आदरसों तिहुंकालमांहि जग थुति विस्तारैं ॥
सो सुकृत शिवपंथ भक्तिरचना कर पूरै ।
पंचकल्यानक ऋद्धि पाय निश्चै दुख चूरै ॥२४॥

अहो जगतपति पूज्य अवधिज्ञानी मुनि हारे।
तुम गुणकीर्तनमाहिं कौन हम मन्द विचारे॥
थुतिछलसों तुमविषै देव आदर विस्तारे।
शिवसुख पूरणहार कल्पतरु यही हमारे॥२५॥
वादिराज मुनिराज शब्दविद्याके स्वामी।
वादिराज मुनिराज तर्कविद्यापति नामी॥
वादिराज मुनिराज काव्यकरता अधिकारी।
वादिराज मुनिराज बड़े भविजनउपकारी॥२६॥

दोहा।

सूल अर्थ बहुविधि कुसुम, भाषासूत्रमझार।
भक्तिमाल भूधर करो, धरो कंठ सुखकार॥१॥

इति भूधरकृत एकीभावस्तोत्र॥२६॥

अथ भूधरदासजीकृत बारह भावना।

१ अनित्यभावना।

दोहा।

राजा राणा छत्रपति, हाथिनके असवार।
मरना सबको एकदिन, अपनी अपनी बार॥१॥

२ । असरनभावना ।

दलबल देई देवता, मातपिता परिवार ।
मरतीविरियां जीवको, कोऊ न राखन.हार ॥२॥

३ । संसारभावना ।

दामविना निरधन दुखी, तृष्णावश धनवान ।
कहूं न सुख संसारमें, सब जग देख्यो छान ॥३॥

४ । एकत्व भावना ।

आप अकेलो अवतरै, मरै अकेलो होय ।
यों कबहूं या जीवको, साथी सगो न कोय ॥४॥

५ । अन्यत्व भावना ।

जहां देह अपनी नहीं, तहां न अपनो कोय ।
घर संपति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय ॥५॥

६ । अशुचित्वभावना ।

दिपै चामचादरमढ़ी, हाड़—पींजरा देह ।
भीतर या सम जगतमें, और नहीं घिनगेह ॥६॥

७ । आस्रवभावना । सोरठा ।

मोहनींदके जोर, जगवासी घूमैं सदा ।
कर्मचोर चहुं ओर, सरवस लूटैं सुधि नहीं ॥७॥

८ । संवरभावना ।

सतगुरु देय जगाय, मोहनींद जब उपसमै ।

तब कुछ बनै उपाय, कर्मचोर आवत रुकें ॥८॥

९ । निर्जरा भावना । दोहा ।

ज्ञानदीप तप तेलभर, घर शोधै भ्रम छोर ।
याविध विन निकसै नहीं, पैठे पूरव चोर ॥९॥
पंचमहाव्रत संचरन, समिति पंचपरकार ।
प्रबल पंच इन्द्रियविजय, धार निर्जरा सार ॥१०॥

१० । लोक भावना ।

चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुषसंठान ।
तामें जीव अनादितें, भरमत है विनज्ञान ॥११॥

११ । वोधिदुर्लभभावना ।

धन कन कंचन राजसुख, सवहिं सुलभकर जान ।
दुर्लभ है संसारमें, एक जथारथ ज्ञान ॥१२॥

१२ । धर्मभावना ।

जांचे सुरतरु देय सुख, चिंतत चिंतारैन ।
विन जांचे विन चिन्तये, धर्म सकल सुखदैन ॥१३॥

इति भूधरदासकृत बारह भावना ॥

भक्तामर स्तोत्रः ।

वसंततिलका ।

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणा,—मुद्योतकं द-लितपापतमोवितानं। सम्यक् प्रणम्य जिनपा-दयुगं युगादा,—वालंबनं भवजले पततां जनानां॥ १॥ यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधा,-दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः। स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः, स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रं ॥२॥ बुद्ध्या विनापि विबुधार्चितपाद-पीठ ! स्तोतुं समुद्यतमतिविगतत्रपोऽहं। बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्ब, मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुं ॥३॥ वक्तुं गुणान्गुणसमुद्र शशांककांतान्, कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या। कल्पांतकालपवनोद्धतनक्रचक्रं, को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्यां ॥४॥ सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश, कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं, ना-

भ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थं ॥५॥ अल्प-श्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम, त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्मां। यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति, तच्चाम्रचारुकलिकानिकरैकहेतु ॥ ६ ॥ त्वत्संस्तवेन भवसंततिसन्निबद्धं, पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजां । आक्रांतलोकमलिनील-मशेषमाशु, सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमंधकारं ॥७॥ मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेद,—मारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात् । चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु, मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदविन्दुः ॥८॥ आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं, त्वत्सं-कथापि जगतां दुरितानि हंति । दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव, पद्माकरेषु जलजानि विकासभांजि ॥९॥ नात्यद्भुतं भुवनभूषण भूतनाथ ! भूतै-र्गुणैर्भुवि भवंतमभिष्टुवंतः । तुल्या भवंति भवतो ननु तेन किं वा, भूत्याश्रितं य इह नात्म-समं करोति ॥१०॥ दृष्ट्वा भवंतमनिमेषविलोक-नीयं, नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः । पीत्वा

पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिंधोः, चारं जलं जलनिधे रसितुं क इच्छेत् ॥११॥ यैः शांतरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं, निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत ! ॥ तावंत एव खलु तेप्यणवः पृथिव्यां, यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥१२॥ वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि, निश्शेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानं । विंवं कलंकमलिनं क्व निशाकरस्य, यद्वासरे भवति पांडुपलाशकल्पं ॥१३॥ संपूर्णमंडलशशांक कलाकलाप !-शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लंघयंति । ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टं ॥१४॥ चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभिर्, नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गं । कल्पांतकालमरुता चलिताचलेन, किं मंदराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ॥ १५ ॥ निर्धूमवर्त्तिरपवर्जिततैलपूरः, कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि । गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां, दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः॥१६॥ नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः स्पष्टीकरोषि

सहसा युगपज्जगंति। नांभोधरोदरनिरुद्धमहा-
प्रभावः सूर्यातिशायिमहिमासि मुनींद्र! लोके
॥१७॥ नित्योदयं दलितमोहमहांधकारं गम्यं न
राहुवदनस्य न वारिदानां। विभ्राजते तव मुखा-
ब्जमनल्पकांति, विद्योतयज्जगदपूर्वशशांकबिंबं
॥१८॥ किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा,
युष्मन्मुखेंदुदलितेषु तमस्सु नाथ!। निष्पन्नशालि-
वनशालिनि जीवलोके, कार्यं कियज्जलधरैर्जल-
भारनम्रैः ॥१९॥ ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृता-
वकाशं, नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु। तेजः
स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं, नैवं तु काचश-
कले किरणाकुलेऽपि ॥२०॥ मन्ये वरं हरिहरादय
एव दृष्टा, दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः, कश्चिन्म-
नो हरति नाथ! भवांतरेऽपि ।२१। स्त्रीणां शतानि
शतशो जनयंति पुत्रान्, नान्या सुतं त्वदुपमं
जननी प्रसूता। सर्वा दिशो दधति भानि सहस्र-
रश्मिं, प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरदंशुजालं ।२२।

त्वामामनंति मुनयः परमं पुमांस,-मादित्यवर्णम-
मलं तमसः पुरस्तात् । त्वामेव सम्यगुपलभ्य ज-
यंति मृत्युं,नान्यः शिवश्शिवपदस्य मुनींद्र ! पंथाः
॥२३॥ त्वामव्ययं विभुमचिंत्यमसंख्यमाद्यं,
ब्रह्माणमीश्वरमनंतमनंगकेतुं । योगीश्वरं विदि-
तयोगमनेकमेकं, ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः
।२४। बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्, त्वं
शङ्करोऽसि भुवनत्रयशङ्करत्वात् । धातासि धीर !
शिवमार्गविधेर्विधानाद्, व्यक्तं त्वमेव भगवन्पु-
रुषोत्तमोऽसि ॥२५॥ तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्त्तिहराय
नाथ ! तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय । तुभ्यं
नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय, तुभ्यं नमो जिनभ-
वोदधिशोषणाय । ।२६। को विस्मयोऽत्र यदि
नाम गुणैरशेषै,-स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया
मुनीश । दोषैरुपात्तविबुधाश्रयजातगर्वैः, स्वप्नां-
तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि । २७ । उच्चै-
रशोकतरुसंश्रितमुन्मयूख,-माभाति रूपममलं भ-
वतो नितांतं । स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानं,

बिम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्त्ति ॥२८॥ सिंहासने मणिमयूखशिखा-विचित्रे विभ्राजते तव वपुः कनकावदातं। बिम्बं वियद्विलसदंशुलतावितानं, तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः २६॥ कुन्दावदा-तचलचामरचारुशोभं, विभ्राजते तव वपुः कल-धौतकांतं । उद्यच्छशांकशुचिनिर्झरवारिधार,-मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौंभं ॥३०॥ छत्रत्रयं तव विभाति शशांककांत,- मुच्चैःस्थितं स्थगित-भानुकरप्रतापं । मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभं, प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वं ।३१। गंभीरतार रवपूरितदिग्विभाग, स्त्रैलोक्यलोकशुभसंगमभूति-दक्षः ।सद्धर्मराजजयघोषणघोषकः सन्, खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥३२॥ मंदार-सुन्दरनमेरुसुपारिजात,-संतानकादिकुसुमोत्करवृ-ष्टिरुद्धा। गंधोदबिंदुशुभमंदमरुत्प्रयाता, दिव्या दिवः पतति ते वयसां ततिर्वा ॥३३॥ शुम्भत्प्रभा-वलयभूरिविभाविभोस्ते, लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपंती । प्रोद्यद्दिवाकरनिरंतरभूरिसंख्या,

दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोमसौम्यां ॥३४॥ स्वर्गापवर्गगममार्गविमार्गणेष्टः, सद्धर्मतत्त्वकथनैकपटुस्त्रिलोक्याः । दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्व,-भाषास्वभावपरिणामगुणैः प्रयोज्यः ।३५। उन्निद्रहेमनवपंकजपुंजकांती, पर्यूल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ । पादौ पदानि तव यत्र जिनेंद्र! धत्तःपद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयंति।३६।इत्थंयथा तव विभूतिरभूज्जिनेंद्र! धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य । यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतांधकारा, तादृक्कुतो ग्रहगणस्य विकासिनोऽपि ॥ ३७ ॥ श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल,मत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपं । ऐरावताभमिभमुद्धतमापतंतं, दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानां ।३८। भिन्नेभकुंभगलदुज्ज्वलशोणिताक्त, मुक्ताफलप्रकरभूभिभागः । बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि, नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ॥३९॥ कल्पांतकालपवनोद्धतवह्निकल्पं, दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्फुलिंगं । विश्वं जिघित्सुमिव संमुखमाप-

तंतं, त्वन्नामकीर्त्तनजलं शमयत्यशेषं ॥ ४० ॥ रक्तेक्षणं समदकोकिलकंठनीलं, क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतंतं । आक्रामति क्रमयुगेण निरस्त-शंक-स्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ।४१। बलगत्तुरंगगजगर्जितभीमनाद,-माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनां । उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धं त्वत्कीर्त्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ।४२। कुंताग्र-भिन्नगजशोणितवारिवाह, वेगावतारतरणातुरयोध भीमे युद्धे जयं । विजितदुर्जयजेयपक्षा,स्त्वत्पादपं-कज वनाश्रयिणो लभंते ।४३। अंभोनिधौ क्षुभित-भीषणनक्रचक्र,-पाठीनपीठभयदोल्वणवाडवाग्नौ रंगत्तरंगशिखरस्थितयानपात्रा, स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद्व्रजंति ॥४४॥ उद्भूतभीषणजलोदर भारभुग्नाः, शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविता-शाः । त्वत्पादपंकजरजोमृतदिग्धदेहा, मर्त्या भवंति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥ ४५ ॥ आपादकंठ मुरुशृंखलवेष्टितांगा, गाढं वृहन्निगडकोटिनि घृष्टजंघाः। त्वन्नाममंत्रमनिशं मनुजाः स्मरंतः,

सद्यः स्वयं विगतबंधभया भवंति ॥४६॥ मत्तद्वि-पेंद्रमृगराजदवानलाहिसंग्रामवारिधिमहोदरबंधनो-त्थं। तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव, यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते। ४७। स्तोत्रस्रजं तव जिनेंद्र! गुणैर्निबद्धां, भक्त्या मया विविधवर्णविचि-त्रपुष्पां। धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्रं, तं मानतुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४८॥

इति श्रीमानतुंगाचार्य विरचितमादिनाथस्तोत्रं समाप्तं ॥

आचार्यश्रीमदुमास्वामीविरचितम्।

मोक्षशास्त्रम्।

अपरनाम

(तत्वार्थसूत्रं)

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥१॥ तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं ॥ २ ॥ तन्निसर्गाद-धिगमाद्वा ॥३॥ जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामो-क्षास्तत्त्वं ॥ ४ ॥ नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ॥५॥ प्रमाणनयैरधिगमः ॥ ६ ॥ निर्देशस्वामित्व-

साधनाऽधिकरणस्थितिविधानतः । ७ । सत्संख्या
क्षेत्रस्पर्शनकालांतरभावाल्पवहुत्वैश्च ॥८॥ मति-
श्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानं ॥९॥ तत्प्रमाणे
॥१०॥ आद्ये परोक्षं ॥११॥ प्रत्यक्षमन्यत् ॥१२॥
मतिः स्मृतिः संज्ञा चिंताऽभिनिबोध इत्यनर्थांतर
।१३। तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं ।१४। अवग्रहेहाऽ-
वायधारणाः ॥ १५ ॥ बहुबहुविधक्षिप्राऽनिःसृता-
ऽनुक्तध्रुवाणां सेतराणां ॥१६॥ अर्थस्य ॥१७॥
व्यंजनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥ न चक्षुरनिंद्रियाभ्यां
॥१९॥ श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदं ॥ २० ॥
भवप्रत्ययोवधिर्देवनारकाणां ॥ २१ ॥ क्षयोपश-
मनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणां ॥२२॥ ऋजुविपु-
लमती मनःपर्ययः ॥२३॥ विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां
तद्विशेषः ।२४। विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधि-
मनःपर्यययोः ॥ २५ ॥ मतिश्रुतयोर्निबंधो द्रव्ये-
ष्वसर्वपर्यायेषु ।२६। रूपिष्ववधेः ॥२७॥ तदनंत-
भागे मनःपर्ययस्य ।२८। सर्वद्रव्यपर्यायेषु केव-
लस्य ।२९। एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मि-

न्नाचतुर्भ्यः ।३०। मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ।३१। सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ।३२। नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः ॥३३॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे प्रथमोध्यायः ॥१॥

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥१॥ द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमं ॥ २ ॥ सम्यक्त्व चारित्रे ॥ ३ ॥ ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोग वीर्याणि च ॥४॥ ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ।५। गतिकषायलिंगमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः ।६। जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥७॥ उपयोगो लक्षणं। ॥८॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥९॥ संसारिणो मुक्ताश्च ॥१०॥ समनस्कामनस्काः ॥११॥ संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥ १२ ॥ पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥१३॥ द्वींद्रियादयस्त्रसाः ॥१४॥ पंचेंद्रि

याणि ॥१५॥ द्विविधानि ॥१६॥ निर्वृत्युपकरणे द्रव्येंद्रियं ॥१७॥ लब्ध्युपयोगौ भावेंद्रियं ॥१८॥ स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥१९॥ स्पर्शरसगंधवर्णशब्दास्तदर्थाः ॥२०॥ श्रुतमनिंद्रियस्य ॥२१॥ वनस्पत्यंतानामेकं ॥ २२ ॥ कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥२३॥ संज्ञिनः समनस्काः ॥ २४ ॥ विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥२५॥ अनुश्रेणि गतिः ॥२६॥ अविग्रहा जीवस्य ॥ २७॥ विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ॥२८॥ एकसमयाऽविग्रहा ॥२९॥ एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः ॥ ३० ॥ संमूर्छनगर्भोपपादा जन्म ॥ ३१ ॥ सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥३२॥ जरायुजांडजपोतानां गर्भः ॥३३॥ देवनारकाणामुपपादः ॥३४॥ शेषाणां संमूर्च्छनं । ३५ । औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि ॥३६॥ परं परं सूक्ष्मं ॥ ३७ ॥ प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् ॥३८॥ अनन्तगुणे परे ॥३९ ॥ अप्रतीघाते ॥ ४० ॥ अनादिसम्बन्धे च

॥४१॥ सर्वस्य ॥ ४२ ॥ तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥४३॥ निरुपभोगमन्त्यं ॥४४॥ गर्भसमूर्च्छनजमाद्यं । ४५॥ औपपादिकं वैक्रियिकं ॥४६॥ लब्धिप्रत्ययञ्च ॥४७॥ तैजसमपि ॥ ४८ ॥ शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥४९॥ नारकसंमूर्च्छिनो नपुन्सकानि ॥ ५० ॥ न देवाः ॥ ५१ ॥ शेषास्त्रिवेदाः ॥ ५२ ॥ औपपादिकचरमोत्तमदेहासंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥ ५३ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमःप्रभा भूमयो घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताऽधोऽधः॥१॥ तासु त्रिंशत्पञ्चविंशतिपञ्चदशदशत्रिपञ्चोनैकनरकशतसहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमं ॥२॥ नारका नित्याऽशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः ॥ ३ ॥ परस्परोदीरितदुःखाः ॥ ४ ॥ संक्लिष्टाऽसुरोदीरितदुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः ॥५॥ तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरो-

पमा सत्वानां परा स्थितिः ॥ ६ ॥ जम्बूद्वीपलव-णोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ॥ ७ ॥ द्वि-र्द्विर्विष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः॥८॥ तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥ ९ ॥ भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहै-रण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥ १० ॥ तद्विभा-जिनः पूर्वापरायताः हिमवन्महाहिमवन्निषधनी-लरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥११॥ हेमार्जु-नतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः ॥ १२ ॥ मणिविचि-त्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ॥ १३ ॥ पद्ममहापद्मतिगिंछकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥ १४ ॥ प्रथमो योजनसहस्रा-यामस्तदर्द्धविष्कम्भो ह्रदः ॥ १५ ॥ दशयोजना-वगाहः ॥ १६ ॥ तन्मध्ये योजनं पुष्करं ॥ १७॥ तद्द्विगुणद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥ १८ ॥ तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपरिषत्काः ॥ १९॥ गंगासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकांतासीतासी-

तोदानारीनरकांतासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥ २० ॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥ २१ ॥ शेषास्त्वपरगाः ॥ २२ ॥ चतुर्दश नदीसहस्रपरिवृता गंगासिन्ध्वादयो नद्यः । २३ । भरतः षड्विंशतिपञ्चयोजनशतविस्तारः षट् चैकोनविंशतिभागा योजनस्य । २४ । तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहांताः ॥ २५ ॥ उत्तरा दक्षिणतुल्याः । २६ । भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्यां ।२७। ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिता । २८ । एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदेवकुरवकाः । २९ । तथोत्तराः । ३० । विदेहेषु संख्येयकालाः । ३१ । भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः । ३२ । द्विर्धातकीखण्डे । ३३ । पुष्करार्द्धे च । ३४ । प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः । ३५ । आर्याम्लेच्छाश्च । ३६ । भरतैरावतविदेहाः कर्म भूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः । ३७ । नृस्थिती

परावरे त्रिपल्योपमांतमुर्हूर्ते । ३८ । तिर्यग्योनि-
जानां च ॥ ३९ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

देवाश्चतुर्णिकायाः ।१। आदितस्त्रिषु पीतां-
तलेश्याः । २ । दशाष्टपंचद्वादशविकल्पाः कल्पो
पपन्नपर्यंताः । ३ । इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंश—
त्पारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्य-
किल्बिषिकाश्चैकशः । ४ । त्रायस्त्रिंशल्लोकपाल-
वर्ज्या व्यंतरज्योतिष्काः ।५। पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ।६। का-
यप्रवीचारा आ ऐशानात् ।७। शेषाः स्पर्शरूपश-
ब्दमनःप्रवीचाराः । ८ । परेऽप्रवीचाराः । ९ ।
भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनि-
तोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥ १० ॥ व्यंतराः किन्नर-
किंपुरुषमहोरगगंधर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः॥ ११॥
ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकता-
रकाश्च । १२ । मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके
। १३ । तत्कृतः कालविभागः । १४ । बहिरव-
स्थिताः । १५ । वैमानिकाः ॥ १६ ॥ कल्पो-

पन्नाः कल्पातीताश्च॥ १७ ॥ उपर्युपरि ।१८। सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेंद्र ब्रह्मब्रह्मोत्तरलांतवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणत— योरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेकेषुविजयवैजयंत— जयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च । १६ । स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धींद्रियावधिविषयतोऽधिकाः ॥ २० ॥ गतिशरीरपरिग्रहाऽभिमानतो हीनाः ॥ २१ ॥ पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥ प्रागग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥ २३ ॥ ब्रह्मलोकालया लौकांतिकाः ॥ २४ ॥ सारस्वतादित्य वह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥ २५॥ विजयादिषु द्विचरमाः ॥ २६ ॥ औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः॥ २७ ॥ स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमाऽर्द्धहीनमिताः ॥ २८ ॥ सौधर्मैशानयोः सागरोपमे अधिके ॥ २६ ॥ सानत्कुमारमाहेंद्रयोः सप्त ॥ ३० ॥ त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपंचदशभिरधिकानि तु ॥ ३१ ॥ आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन

नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ ३२ ॥ अपरा पल्योपममधिकं ॥ ३३ ॥ परतः परत पूर्वापूर्वानन्तराः ॥३४॥ नारकाणां च द्विती-यादिषु ॥ ३५ ॥ दशवर्षसहस्राणि प्रथमायां ॥ ३६ ॥ भवनेषु च ॥ ३७ ॥ व्यंतराणां च ॥ ३८ ॥ परा पल्योपममधिकं ॥ ३९ ॥ ज्योतिष्काणां च ॥ ४० ॥ तदष्टभागोऽपरा ४१ लोकांतिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषां ॥ ४२ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥ १ ॥ द्रव्याणि ॥ २ ॥ जीवाश्च ॥ ३ ॥ नित्यावस्थि-तान्यरूपाणि ॥ ४ ॥ रूपिणः पुद्गलाः ॥ ५ ॥ आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥ ६ ॥ निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥ असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवा-नां ॥ ८ ॥ आकाशस्यानंताः ॥ ९ ॥ संख्येया-संख्येयाश्च पुद्गलानां । १० । नाणोः ।११। लो-काकाशेऽवगाहः । १२ । धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ।१३। एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानां । १४ । अस-

ख्येयभागादिषु जीवानां ॥ १५ ॥ प्रदेशसंहार-
विसर्पाभ्यां प्रदीपवत् । १६ । गतिस्थित्युपग्रहौ
धर्माधर्मयोरुपकारः । १७ । आकाशस्यावगाहः
।१८। शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानां ।१९।
सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च । २० । परस्प-
रोपग्रहो जीवानां । २१ । वर्त्तनापरिणामक्रियाः
परत्वापरत्वे च कालस्य । २२ । स्पर्शरसगंधव-
र्णवन्तः पुद्गलाः ।२३। शब्दबंधसौक्ष्म्यस्थौल्य-
संस्थानभेदतमश्छायातपोद्योतवन्तश्च ॥२४॥ अ-
णवः स्कंधाश्च । २५ । भेदसंघातेभ्य उत्पद्यंते
॥ २६ ॥ भेदादणुः । २७ । भेदसंघाताभ्यां
चाक्षुषः । २८ । सद्द्रव्यलक्षणं ।२९। उत्पादव्य-
यध्रौव्ययुक्तं सत् । ३० । तद्भावाव्ययं नित्यं
। ३१ । अर्पितानर्पितसिद्धेः ।३२। स्निग्धरूक्षत्वाद्
बंधः । ३३ । न जघन्यगुणानां । ३४ । गुणसाम्ये
सदृशानां । ३५ । द्व्यधिकादिगुणानां तु । ३६ ।
बंधेऽधिकौ पारिणामिकौ च । ३७ । गुणपर्ययव-
द्द्रव्यं ॥ ३८ ॥ कालश्च । ३९ । सोऽनंतसमयः

॥ ४० ॥ द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥ ४१ ॥
तद्भावः परिणामः ॥ ४२ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

कायवाङ्मनःकर्म योगः ॥ १ ॥ स आस्रवः ॥ २ ॥ शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥ ३ ॥ सकषायाकषाययोः सांपरायिकेर्यापथयोः ॥ ४ ॥ इन्द्रियकषायाव्रतक्रियाःपंचचतुःपंचपंचविंशतिसंख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥ ५ ॥ तीव्रमंदज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥ ६ ॥ अधिकरणं जीवाजीवाः ॥ ७ ॥ आद्यं संरंभसमारंभारंभयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥ ८ ॥ निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परं ॥ ९ ॥ तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥ १० ॥ दुःखशोकतापाक्रंदनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थानान्यसद्वेद्यस्य ॥ ११ ॥ भूतव्रत्यनुकंपादानसरागसंयमादियोगः क्षांतिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥ १२ ॥ केवलिश्रुतसंघ-

धर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥ १३ ॥ कषायो-
दयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य ॥ १४ ॥ बह्वा-
रंभपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥ १५ ॥ माया
तैर्यग्योनस्य ॥ १६ ॥ अल्पारंभपरिग्रहत्वं मानु-
षस्य ॥ १७ ॥ स्वाभावमार्दवं च । १८ । निःशी-
लव्रतित्वं च सर्वेषां ॥ १९ ॥ सरागसंयमासंयमा
कामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य । २० । सम्यक्त्वं
च । २१ । योगवक्रताविसंवादनं चाशुभस्य
नाम्नः । २२ । तद्विपरीतं शुभस्य । २३ । दर्शन
विशुद्धिर्विनयसंपन्नता शीलव्रतेष्वनतीचारोऽभी
क्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी सा-
धुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचन
भक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचन
वत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य । २४ । परात्मनिंदा
प्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य
॥ २५ ॥ तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य । २६ ।
विघ्नकरणमंतरायस्य ॥ २७ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतं ॥ १ ॥ देशसर्वतोणुमहती ॥ २ ॥ तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पंच पंच ।३। वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पंच ॥ ४ ॥ क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पंच ।५। शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसद्धर्माविसंवादाः पंच ।६। स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहरांगनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पंच ॥ ७ ॥ मनोज्ञामनोज्ञेंद्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च ॥ ८ ॥ हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनं ॥ ९ ॥ दुःखमेव वा । १० । मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि च सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु ।११। जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थं । १२ । प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ।१३। असदभिधानमनृतं ।१४। अदत्तादानं स्तेयं ।१५। मैथुनमब्रह्म । १६ । मूर्च्छा परिग्रहः । १७ । निःशल्यो व्रती । १८ । अगार्यनगारश्च । १९ । अणुव्रतोऽगारी ॥ २० ॥

दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोप-
भोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसंपन्नश्च
।२१। मारणांतिकीं सल्लेखनां जोषिता ।२२। शंका-
कांक्षाविचिकित्सान्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृ-
ष्टेरतीचाराः । २३ । व्रतशीलेषु पंच पंच यथाक्रमं
॥ २४ ॥ वंधवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरो-
धाः । २५। मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रि-
यान्यासापहारसाकारमंत्रभेदाः । २६ । स्तेनप्रयो-
गतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानो-
न्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः । २७। परविवाहकरणे-
त्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीतागमनानंगक्रीडाकाम-
तीव्राभिनिवेशाः । २८ । क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णध-
नधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमाः ।२६। ऊ—
र्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यंतराधानानि
।३०। आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गल—
क्षेपाः ।३१। कंदर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिक
रणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि।३२।योगदुःप्रणिधा-
नान्यनादरस्मृत्यनुपस्थानानि ।३३। अप्रत्यवेक्षिता-

प्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्यनु-पस्थानानि । ३४ । सचित्तसम्बन्धसंमिश्राभिषव-दुःपक्वाहाराः । ३५ । सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्य-पदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः । ३६ । जीवितमरणा-शंसामित्रानुरागसुखानुबंधनिदानानि । ३७ । अनु-ग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानं । ३८ । विधिद्रव्यदा-तृपात्रविशेषात्तद्विशेषः । ३९ ।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बंधहेतवः । १ । सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्ग-लानादत्ते स बंधः । २ । प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशा-स्तद्विधयः । ३ । आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीय-मोहनीयायुर्नामगोत्रांतरायाः । ४ । पंचनवद्व्य-ष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपंचभेदा यथाक्रमं । ५ । मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानां । ६ । चक्षु-रचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रच-लाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च । ७ । सदसद्वेद्ये । ८ । दर्श-नचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रि-

द्विनवषोडशभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्य-कषायकषायौ हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुं-न्नपुंसकवेदा अनंतानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्या-नसंज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः ॥ ९ ॥ नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ॥१०॥ गति-जातिशरीरांगोपांगनिर्माणबन्धनसंघातसंस्थानसं-हननस्पर्शरसगंधवर्णानुपूर्व्यगुरुलघूपघातपरघातात-पोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रससु-भगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेययशःकीर्ति-सेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥ ११ ॥ उच्चैर्नीचैश्च ॥ १२ ॥ दानलाभभोगोपभोगवीर्याणां ॥ १३ ॥ आदितस्तिसृणामंतरायस्य च त्रिंशत्सागरोप-मकोटीकोट्यः परा स्थितिः । १४ । सप्ततिर्मोह-नीयस्य । १५ । विंशतिर्नामगोत्रयोः । १६ । त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः । १७ । अपरा द्वा-दशमुहूर्ता वेदनीयस्य ।१८।नामगोत्रयोरष्टौ।१९। शेषाणामंतर्मुहूर्त्ता । २० । विपाकोऽनुभवः ।२१। स यथानाम । २२ । ततश्च निर्जरा ।२३। नाम-

प्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनंतानन्तप्रदेशाः ।२४। सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यं । २५ ।। अतोऽन्यत्पापं। २६ ।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रेऽष्टमोध्यायः ॥ ८ ॥

आस्रवनिरोधः संवरः । १ । स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः ॥ २ ॥ तपसा निर्जरा च ॥ ३ ॥ सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥ ४ ॥ ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाःसमितयः ॥ ५॥ उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥ ६ ॥ अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मस्वाख्याततत्त्वानुचिंतनमनुप्रेक्षाः । ७ । मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः ।८। क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाञ्चालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनानि ॥ ९ ॥ सूक्ष्मसांपरायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ॥१०॥

एकादश जिने ॥ ११ ॥ बादरसांपराये सर्वे ।१२।
ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने । १३ । दर्शनमोहांतराय-
योरदर्शनालाभौ । १४ । चारित्रमोहे नाग्न्यार-
तिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाच्ञासत्कारपुरस्काराः ।१५।
वेदनीये शेषाः ॥ १६ ॥ एकादयो भाज्या युग-
पदेकस्मिन्नेकोनविंशतिः ॥ १७ ॥ सामायिक-
च्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययं-
थाख्यातमिति चारित्रं ॥ १८ ॥ अनशनावमौ-
दर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यास-
नकायक्लेशा बाह्यं तपः ॥१९॥ प्रायश्चित्तविन-
यवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरं ॥ २० ॥
नवचतुर्दशपंचद्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ।२१।
आलोचनप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छे-
दपरिहारोपस्थापनाः ॥२२ ॥ ज्ञानदर्शनचारित्रो-
पचाराः ॥२३॥ आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्ष्य-
ग्लानगणकुलसंघसाधुमनोज्ञानां ॥२४॥ वाचना-
पृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः ।२५। बाह्याभ्यं-
तरोपध्योः ॥२६॥ उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिंतानि-

रोधो ध्यानमांतर्मुहूर्तात् ॥२७॥ आर्तरौद्रधर्म्य-
शुक्लानि ॥२८॥ परे मोक्षहेतू ॥२९॥ आर्तमम-
नोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वा
हारः ॥३०॥ विपरीतं मनोज्ञस्य ॥३१॥ वेदना-
याश्च ॥३२॥ निदानं च ॥३३॥ तदविरतदेशवि-
रतप्रमत्तसंयतानां ॥ ३४ ॥ हिंसानृतस्तेयविष-
यसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः ॥३५॥
आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यं ॥ ३६ ॥
शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥३७॥परे केवलिनः ॥३८॥
पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरत-
क्रियानिवर्तीनि ॥३९॥त्र्येकयोगकाययोगायोगानां
॥ ४० ॥ एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे ॥ ४१ ॥
अवीचारं द्वितीयं ॥ ४२ ॥ वितर्कः श्रुतं ॥४३॥
वीचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसंक्रांतिः ॥ ४४ ॥ सम्यग्द-
ष्टिश्रावकविरतानंतवियोजकदर्शनमोहक्षपको-
पशमकोपशांतमोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रम-
शोऽसंख्येयगुणनिर्जराः ॥ ४५ ॥ पुलाकवकुश-
कुशीलनिर्ग्रंथस्नातका निर्ग्रंथाः ॥ ४६ ॥ संयम-

श्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिंगलेश्योपपादस्थानविक-
ल्पतः साध्याः ॥४७॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणांतरायक्षयाच्च के-
वलं ॥ १ ॥ बंधहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्म-
विप्रमोक्षो मोक्षः ॥२॥ औपशमिकादिभव्यत्वा-
नां च ॥ ३ ॥ अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शन-
सिद्धत्वेभ्यः ॥४॥ तदनंतरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकां-
तात् ॥ ५ ॥ पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बंधच्छेदात्तथा
गतिपरिणामाच्च ॥६॥ आविद्धकुलालचक्रवद्व्य-
पगतलेपालांबुवदेरंडवीजवदग्निशिखावच्च ॥७॥
धर्मास्तिकायाभावात् ॥ ८ ॥ क्षेत्रकालगतिलिं-
गतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनांत-
रसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥ ९ ॥

अक्षरमात्रपदस्वरहीनं व्यंजनसंधिविवर्जितरेफं ।
साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥ १ ॥
दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्वार्थे पठिते सति ।
फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुंगवैः ॥ २ ॥
तत्त्वार्थ सूत्रकर्त्तारं गृद्धपिच्छोपलक्षितं ।
वंदे गणींद्रसंजातमुमास्वामिमुनीश्वरं ॥ ३ ॥

इति तत्त्वार्थसूत्रापरनामतत्वार्थाधिगममोक्षशास्त्रं समाप्तं ॥

स्वर्गीय कविवर पं० दौलतरामजीकृत

छहढाला ।

सोरठा ।

तीनभुवनमें सार, वीतराग विज्ञानता ।
शिवस्वरूप शिवकार, नमौं त्रियोग सम्हारिकैं ।

पहिली ढाल ।

चौपाई (१५ मात्रा)

जे त्रिभुवनमें जीव अनन्त । सुख चाहैं दुखतैं भयवंत ॥ तातैं दुखहारी सुखकारि । कहैं सीख गुरु करुना धारि ॥ २ ॥ ताहि सुनो भवि मन थिर आन । जो चाहौ अपनो कल्यान ॥ मोह महामद पियो अनादि । भूलि आपको भरमत वादि ॥ ३ ॥ तास भ्रमनकी है बहु कथा । पै कछु कहूं कही मुनि जथा ॥ काल अनन्त नि-गोदमझार । बीत्यो एकेंद्रिय—तन धार ॥ ४ ॥ एक स्वासमें अठदश बार । जन्म्यो मर्‍यो भर्‍यो दुखभार ॥ निकसि भूमि जल पावक भयो । प्रतेकवनस्पति थयो ॥ ५ ॥ दुर्लभ लहि

ज्यों चिंतामणी । त्यों परजाय लही त्रसतणी ॥ लट पिपीलि अलि आदि शरीर । धर धर मर्‌यो सही बहु पीर ॥६॥ कबहूं पंचेंद्रिय पशु भयो । मनविन निपट अज्ञानी थयो ॥ सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर । निबल पशू हति खाए भूर ॥७॥ कबहूं आप भयो बलहीन । सबलनि करि खायो अतिदीन ॥ छेदन भेदन भूख पियास । भारबहन हिम आतपत्रास ॥ ८ ॥ बध बन्धन आदिक दुख घने । कोटि जीभतैं जात न भने ॥ अति संक्लेशभावतैं मर्‌यो । घोर शुभ्रसागरमैं पर्‌यो ॥ ९ ॥

तहां भूमि परसत दुख इसो । बीछू सहस डसैं नहिं तिसो । तहां राधशोणितबाहिनी । कृमिकुल कलित देहदाहिनी ।१०। सेंमर तरु जुतदलअसिपत्र । असि ज्यों देह विदारैं तत्र । मेरुसमान लोह गलि जाय । ऐसी शीत उष्णता थाय ।११। तिलतिल कराहिं देहके खंड । असुर भिडावैं दुष्ट प्रचंड । सिंधुनीरतैं प्यास न जाय । तौ पण

एक न बून्द लहाय ॥ १२ ॥ तीनलोकको नाज जु खाय । मिटै न भूख, कणा न लहाय । ये दुख बहु सागरलौं सहै । कर्मजोगतैं नरतन लहै ॥१३॥ जननी उदर बस्यो नवमास । अंगसकुचतैं पाई त्रास । निकसत जे दुख पाये घोर । तिनकों कहत न आवै ओर ॥ १४ ॥ बालपनेमें ज्ञान न लह्यो । तरुणसमय तरुणीरत रह्यो । अर्धमृतकसम बूढापनो । कैसैं रूप लखै आपनो ॥ १५ ॥ कभी अकामनिर्जरा करै । भवनत्रिकमें सुरतन धरै । विषय-चाह-दावानल-दह्यो । मरत विलाप करत दुख सह्यो । ॥१६॥ जो विमानवासी हू थाय । सम्यकदर्शनविन दुखपाय । तहंतैं चय थावरतन धरै । यौं परिवर्तन पूरे करै ॥

दूसरी ढाल ।

पद्धरिछंद ।

ऐसैं मिथ्या दृगज्ञानचर्ण,वश भ्रमत भरत दुख जन्ममर्ण । तातैं इनको तजिये सुजान । सुन तिन संछेप कहूं बखान ॥ १ ॥ जीवादिप्र

योजनभूत तत्त्व । सरधै तिनमाहिं विपर्ययत्व ।
चेतनको है उपयोग रूप । विनमूरति चिनमूरति अनूप ॥२॥ पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल-
इनतैं न्यारी है जीवचाल ॥ ताकों न जानि
विपरीति मान । करि, करै देहमें निजपिछान।३।
मैं सुखी दुखी मैं रंक राव । मेरो धन गृह गो-
धन प्रभाव ॥ मेरे सुत तिय मैं सबल दीन । बे-
रूप सुभग मूरख प्रवीन ॥ ४ ॥ तनउपजत अ-
पनी उपज आनि । तननशत आपको नाशमानि
॥ रागादि प्रगट जे दुःखदैन । तिनहीकौं सेवत
गिनत चैन ॥५॥ शुभ अशुभबंधके फलमझार ।
रति अरति करी निजपदविसार ॥ आतमहित-
हेतु विराग ज्ञान । ते लखै आपको कष्टदान ।६।
रोकी न चाह निजशक्ति खोय । शिवरूप निरा-
कुलता न जोय । याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान।
सो दुखदायक अज्ञान जान ॥७॥ इनजुत विष-
यनिमें जो प्रवृत्त । ताकौं जानो मिथ्याचरित्त ॥
यौं मिथ्यात्वादि निसगजेह । अब जे गृहीत

सुनिये सुतेह ॥८॥ जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव। पोषैं चिर दर्शनमोह एव ॥ अंतररागादिक धरैं जेह। बाहर धन अंबरतैं सनेह ॥९॥ धारैं कुलिंग लहि महतभाव। ते कुगुरु जनम-जल-उपल-नाव जे रागद्वेषमलकरि मलीन। वनिता गदादिजुत चिह्नचीन ॥ १०॥ ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव। शठ करत, न तिन भवभ्रमनछेव ॥ रागादिभाव हिंसासमेत। दर्वित त्रसथावर मरनखेत ॥११॥ जे क्रिया तिन्हैं जानहु कुधर्म। तिन सरधैं जीव लहै अशर्म ॥ याकोंगृहीतमिथ्यात जान। अब सुन गृहीत जो हैं कुज्ञान ॥ १२ ॥ एकांतवाद दूषित समस्त। विषयादिकपोषक अप्रशस्त ॥ कपिलादिरचित श्रुतको अभ्यास। सो है कुबोध बहु देन त्रास ॥ १३ ॥ जो ख्यातिलाभपूजादि चाह। धरि करत विविधविध देहदाह ॥ आतम अनात्मके ज्ञानहीन। जे जे करनी तनकरन छीन ।१४। ते सब मिथ्याचारित्र त्यागि। अब आतम के हित पंथ लागि ॥ जगजालभ्रमनको देय त्यागि। अब 'दौलत' निजआतमसुपागि ।१५।

तीसरी ढाल

नरेन्द्रछंद [जोगीरासा]

आतमको हित है सुख, सो सुख आकुलता विन कहिये। आकुलता शिवमाहिं न तातैं, शिवमग लाग्यो चहिये॥ सम्यकदर्शन ज्ञान चरन शिव, मग सो दुविध विचारो। जो सत्या-रथरूप सु निश्चय, कारन सो व्यवहारो॥१॥ परद्रव्यनितें भिन्न आपमें, रुचि सम्यक्त भला है। आप रूप-को जानपनो सो सम्यसज्ञानकला है॥ आपरूप-में लीन रहै थिर, सम्यकचारित सोई। अव व्यवहार मोक्षमग सुनिये, हेतु नियंतको होई ॥२॥ जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बंधरु संवर जानो। निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनके, ज्यौंको त्यौं सरधानो॥ है सोई समकित व्यवहारी, अव इन रूप वखानौ। तिनको सुनि सामान्यविशेषै, दृढ़ प्रतीति उर आनौ॥ ३ ॥ बहिरातम अंतर-आतम पर-मातम जीव त्रिधा है। देह जीवको एक गिनै बहि-रातमतत्त्वमुधा है॥ उत्तम मध्यम

जघन त्रिविधिके, अंतरआतम ज्ञानी। द्विविधि संगविन शुधउपयोगी, मुनि उत्तम निज ध्यानी ।४। मध्यम अंतरआतम हैं जे, देशव्रती आगारी जघन कहे अविरत समदृष्टी, तीनों शिवमग-चारी ॥ सकल निकल परमातम द्वैविध, तिनमें घातिनिवारी । श्रीअरहंत सकल परमातम, लोकालोकनिहारी ॥ ५ ॥ ज्ञानशरीरी त्रिविधि कर्म, मल वर्जित सिद्ध महंता । तेहैं निकल अमल परमातम, भोगैं शर्म अनन्ता ॥ वहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजे । परमातमको ध्याय निरंतर, जो नित आनंद पूजे ।६। चेतनता विन सो अजीव है, पंच भेदताके हैं । पुदगल पंच वरन रस पन गंध, दुफरसवसु जाके हैं ॥ जिय पुदगलको चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरूपो । तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन विन-मूर्ति निःरूपी ।७। सकल द्रव्यको वास जासमें, सोआकाश पिछानो । नियत वरतना निशिदिन सो, व्यवहार काल परिमानो ॥ यौं अजीव अब

आस्रव सुनिये, मनवचकाय त्रियोगा । मिथ्या अविरत अरु कषाय पर, मादसहित उपयोगा ।८। ये ही आतमके दुखकारन तातैं इनको तजिये जीवप्रदेश बंधें विधिसौं सो, बंधन कबहुं न सजिये ॥ शमदमसौं जो कर्म न आवें, सो संवर आदरिये । तपबलतैं विधिझरत निरजरा, ताहि सदा आचरिये ॥ ६ ॥ सकल करम तैं रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी । इहिविधि सो सरधा तत्त्वनकी, सो समकित व्योहारी देव जिनेंद्र गुरु परिग्रह विन, धर्म दयाजुत सारो । येहु मान समकितको कारन, अष्टअङ्गजुत, धारो । १० । वसु मद टारि निवारि त्रिसठता, षट अनायतन त्यागो । शंका दिक वसु दोष विना, संवेगादिक चित पागो । अष्ट अंग अरु दोष पचीसों, अव संक्षेपहु कहिये । विन जानेतैं दोष गुननकों, कैसे तजिये गहिये । ११ । जिनवचमें शंका न धारि वृष, भवसुखवांछा भानै । मुनितन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व

कुतत्त्व पिछानै । निजगुन अर पर अवगुणढांकै, वा निजधर्म वढावै । कामादिककर वृषतैं चिगते, निजपरकों सु दृढावै । १२ । धर्मीसौं गउवच्छ प्रीतिसम, कर जिनधर्म दिपावै । इन गुनतैं विपरीति दोष वसु, तिनको सतत खिपावै । पता भूप वा मातुल नृप जो होय न तो मद ठानै । मद न रूपको मद न ज्ञानको, धनवलको मद भानै । १३ । तपको मद न मद जु प्रभू ताको, करै न सो निज जानै । मद धारै तौ येही दोष वसु, समकितकों मल ठानै । कुगुरुकुदेवकु-वृषसेवककी, नहिं प्रशंस उचरै है । जिनमुनि जिनश्रुत विन कुगुरादिक, तिन्हैं न नमन करै है ।१४। दोषरहित गुनसहित सुधी जे सम्यकदरश सजे हैं। चरितमोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजे हैं। गेही पै गृहमें न रचै ज्यों, जलमें भिन्न कमल है । नगरनारिको प्यार यथा, कादेमें हेम अमल है । १५ । प्रथम नरक विन षट भू ज्यो-तिष वान भवन षँठ नारी । थावर विकलत्रय प-

शुमें नहिं, उपजत समकितधारी। तीनलोक तिहुंकालमाहिं नहिं, दर्शनसो सुखकारी। सकल धरमकौ मूल यही इस-विन करनी दुखकारी। १६। मोक्षमहलकी परथम सीढी, या विन ज्ञान चरित्रा। सम्यकता न लहैं सो दर्शन,धारो भव्य पवित्रा॥ 'दौल' समझ सुन चेत सयाने, कालवृथा मत खोवै। यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक नहिं होवै॥ १७ ॥

चौथी ढाल।

दोहा।

सम्यकश्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यकज्ञान।
स्वपरअर्थ वहु धर्मजुत, जो प्रकटावन भान।१।

रोला छंद। २४ मात्रा।

सम्यकसाथै ज्ञान, होय पै भिन्न अराधौ। लक्षण श्रद्धा जानि, दुहूमें भेद अवाधो। सम्यककारण ज्ञान, ज्ञान कारज है सोई। युगपत होतैं हू, प्रकाश दीपकतैं होई। १। तास भेद दो हैं परोक्ष, परतछि तिनमाहीं। मति श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मनतैं उपजाहीं। अवधि ज्ञान मन पर्जय,

द्रो हैं देशप्रतच्छा। द्रव्यक्षेत्रपरिमान लिये, जानैं जिय स्वच्छा।३। सकल द्रव्यके गुन अनंत, परजाय अनंता। जानैं एकै काल, प्रगट केवलि भगवंता। ज्ञान समान न आन, जगतमें सुखको कारन। इह परमामृत जन्म, जरामृतरोगनिवारन।४। कोटि जनम तप तपैं, ज्ञान विन कर्म झरैं जे। ज्ञानीके छिनमाहित्रिगुप्तितैं सहज टरैं ते॥ मुनिव्रत धार अनंतबार, ग्रीवक उपजायो। पै निजआतमज्ञान विना सुख लेश न पायो।५। तातैं जिनवरकथित तत्त्व, अभ्यास करीजे। संशय विभ्रम मोह त्याग, आपो लखि लीजे॥ यह मानुषपरजाय सुकुल, सुनिवो जिनवानी। इह-विधि गये न मिलै, सुमनि ज्यों उदधि समानी॥६॥ धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै। ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै॥तास ज्ञानको कारन, स्वपरविवेक बखान्यौ। कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आन्यो॥७॥ जे पूरव शिव गये, जात अब आगे जै हैं।

सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहे हैं ॥
विषयचाह-द्व-दाह, जगतजन अरनि दझावै ।
तासु उपाय न आन, ज्ञानघनघान बुझावै ॥८॥
पुण्यपाप-फलमाह, हरषिं विलखौ मत भाई । यह
पुद्गल परजाय, उपजि विनसै थिर थाई॥ लाख
वातको वात, यहै निश्चय उर लावो ॥ तोरि
सकल जगदन्दफन्द, निज आतम ध्यावो ॥९॥
सम्यकज्ञानी होइ, वहुरि दृढ़ चारित लीजे ।
एकदेश अरु सकल, देश, तस भेद कहीजे ॥
त्रस हिंसाको त्याग, वृथा थावर न संघारै । पर-
वधकार कठोर निंद्य, नहिं वयन उचारै ॥१०॥
जल मृतिका विन और नाहिं कछु गहै अदत्ता ।
निजवनिताविन सकल, नारिसौं रहै विरत्ता ॥
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै । दश-
दिशि गमनप्रमान, ठान तसु सीम न नाखै॥११॥
ताहूमें फिर ग्राम गली, गृह बाग बजारा। गम-
नागमन प्रमान, ठान अन सकल निवारा । का-
हूके धन हानि, किसी जय हार न चिंतै । देय न

सो उपदेश, होय अघ वनिज कृषीतैं ॥१२॥ कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै। असि धनु हल हिंसोपकरन, नहिं दे जस लाधै॥ रागद्वेषकरतारकथा, कबहूं न सुनीजे। और हु अनरथ दंड, हेतुअघ तिन्हैं न कीजे ॥१३॥ धर उर समताभाव, सदा सामायिक करिये। पर्वचतुष्टयमाहिं, पाप तजि प्रोषध धरिये॥ भोग और उपभोग, नियम करि ममतु निवारै। मुनिको भोजन देय, फेर निज करहि अहारै॥१४॥ बारह व्रतके अतीचार, पन पन न लगावैं। मरनसमय सन्यास, धारि तसु दोष नशावै॥ यौं श्रावकव्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावै। तहंतैं चय नरजन्म, पाय मुनि ह्वै शिव जावै ॥ १५ ॥

पांचवीं ढाल।

सखीछन्द (मात्रा १४)

मुनि सकलव्रती बड़भागी। भवभोगनतैं वैरागी। वैराग्यउपावन माई। चिंतो अनुप्रेक्षा भाई॥ १ ॥ इन चिंतत समरस जागै। जिमि

ज्वलन पवनके लागै । जब ही जिय आतम जानै । तब ही जिय शिवसुखथानै । २ । जोवन गृह गोधन नारी । हय गय जन आज्ञाकारी ॥ इन्द्रिय भोगा छिन थाई । सुरधनु चपला चपलाई ॥ ३॥ सुर असुर खगाधिप जेते । मृग ज्यौं हरि काल दले ते ॥ मणि मंत्र तंत्र बहु होई । मरते न बचावै कोई ॥ ४ ॥ चहुंगतिदुख जीव भरै हैं । परिवर्तन पंच करै हैं । सबविधि संसार असारा । यामें सुख नाहिं लगारा ॥५॥ शुभ अशुभ करमफल जेते । भोगै जिय एकहि तेते । सुत दारा होय न सीरी । सब स्वारथके हैं भीरी ॥६॥ जलपय ज्यौं जियतन मेला । पै भिन्न भिन्न नहिं भेला । तो प्रकट जुदे धन धामा । क्यों ह्वै इकमिलि सुत रामा ।७। पलिरुधिर-राध-मलथैली । कीकस वसादितैं मैली । नवद्वार बहैं घिनकारी । अस देह करै किम यारी ॥८॥ जो जोगनकी चपलाई । तातैं ह्वै आश्रव भाई । आश्रव दुखकार घनेरे । बुधिवंत तिन्हैं निरवेरे ।९। जिन

पुण्यपाप नहिं कीना। आतम अनुभव चित दीना। तिन ही विधि आवत रोके। संवर लहि सुख अवलोके ॥१०॥ निज काल पाय विधिझ-रना। तासौं निजकाज न सरना। तप करि जो कर्म खपावै। सोई शिव सुख दरसावै ॥ ११ ॥ किन हू न करचो न धरै को। षटद्रव्यमयी न हरै को। सो लोकमाहिं विन समता। दुख सहै जीव नित भ्रमता ।१२।अंतिम ग्रीवकलौंकी हद। पायो अनंतबिरियां पद। पर सम्यक ज्ञान न लाधो। दुलभ निजमें मुनि साधो ॥१३॥ जे भाव मोहतैं न्यारे। दृग ज्ञान व्रतादिक सारे। सो धर्म जवै जिय धारै। तवही सुख अचल निहारै ॥ १४ ॥ सो धर्म मुनीकिरि धरिये, तिनकी क-रतूति उचरिये। ताको सुनिके भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी। १५।

छट्ठी ढाल।

हरिगिता छन्द।

षटकाय जीव न हननतैं, सब विधि दरव-

हिंसा टरी। रागदि भाव निवारतैं, हिंसा न भावित अवतरी। जिनके न लेश मृषान जल तृन हू बिना दीयो गहैं। अठदशसहस विधि शीलधर, चिद्ब्रह्ममें नित रमि रहैं ॥ १ ॥ अंतर्चतुर्दश भेद बाहिर, संग दशधातैं टलैं। परमाद तजि चउकर मही लखि, समिति ईर्यातैं चलैं॥ जग सुहितकर, सब अहितकर श्रुतिसुखद सब संशय हरैं। भ्रमरोगहिर जिनके वचन, मुखचंद्रतैं अम्रत झरै ॥ २ ॥ छ्यालीस दोष विना सुकुल श्रावकतणे घर अशनको। लैं, तप बढ़ावन हेत नहिं तन, पोखते तजि रसनको॥ शुचि ज्ञान संजम उपकरन, लखि कैं गहैं लखिकैं धरैं। निर्जंतु थान विलोक तन-मल, मूत्र श्लेषम परिहरैं॥ ३ ॥ सम्यक प्रकार निरोधि मनवच, काय आतम ध्यावते। तिन सुथिरमुद्रा देखि मृगगन, उपल खाज खुजावते॥ रसरूप गंध तथा फरस अरु, शब्द शुभ असुहावने। तिनमें न राग विरोध, पंचेंद्रियजयन पद पावने ॥४॥ समता

सन्हारैं थुति उचारैं, वंदना जिनदेवको। नित करैं श्रुत रति धरैं प्रतिक्रम, तजैं तन अहमेवको॥ जिनके न न्हौन न दन्तधोवन, लेश अम्बर आवरन। भू माहि पिछली रयनिमें कछु, शयन एकासन करन॥५॥ इक बार दिनमें लें अहार, खड़े अलप निज पानमें। किचलोंच करत न डरत परिषह, सों लगे निज ध्यानमें॥अरि मित्र महल मसान कंचन, काच निन्दन थुतिकरन। अर्घावतारन असिप्रहारन, में सदा समताधरन॥६॥ तप तपैं द्वादश धरैं वृष दश, रतनत्रय सेवैं सदा। मुनिसाथमें वा एक विचरैं, चहैं नहिं भवसुख कदा॥ यों है सकल संजमचरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब। जिस होत प्रगटै आपनी निधि, मिटै परको प्रवृति सब॥७॥ निज परम पैनी सुबुधि छैनी डारि अन्तर भेदिया। वरनादि अरु रागादितैं, निज भावको न्यारा किया॥ निजमें निजके हेतु निजकर, आपको आपै गह्यो। गुनी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय,-मझार कछु भेद न

रह्यो ॥८॥ जहं ध्यान ध्याता ध्येयको न, विकल्प वचभेद न जहां। चिद्भाव कर्म चिदेश करता, चेतना किरिया तहां ॥ तीनों अभिन्न अखिन्न शुध,- उपयोगकी निश्चल दशा। प्रगटी जहां दृग ज्ञान व्रत ये, तीनधा एकै लशा ॥९॥ परमान नय निक्षेपको न, उदोत अनुभवमें दिखै। दृग-ज्ञान-सुख-बलमय सदा नहिं, आनभाव जुमो विखैं ॥ मैं साध्य साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तस फलनितैं। चितपिंड चंड अखंड सुगुन,-करंड च्युत पुनि कलनितैं ॥ १० ॥ यों चिंत्य निजमैं थिर भये तिन, अकथ जो आनन्द लह्यो। सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा, अहमिंद्रकैं नाहीं कह्यो ॥ तव ही शुकलध्यानाग्निकर, चउघाति विधिकानन दह्यो। सब लख्यो केवलज्ञानकरि, भविलोककौं शिवमग कह्यो ॥११॥ पुनिघाति शेष अघातिविधि, छिनमाहिं अष्टमभू वसैं। वसुकर्म विनशैं सुगुन वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसे ॥ संसार खार अपार पारावार, तिर तीरहिं गये। अविकार अकल अरूप शुध, चिद्रूप अविनाशी भये

॥१२॥ निजमाहिं लोक अलोक गुन, परजाय प्रतिबिंबित थये। रहि हैं अनंतानंत काल, यथा तथा शिव परनये ॥ धनि धन्य हैं जे जीव नरभव, पाय यह कारज किया। तिनही अनादी भ्रमन पंचप्रकार, तजि वर सुख लिया ॥१३॥ मुख्योपचारदुभेद यौं बड़भागि रत्नत्रय धरें। अरु धरेंगे ते शिव लहैं, तिन सुजसजल जगमल हरें ॥ इमि जानि आलस हानि साहस, ठानि यह सिख आदरो। जबलौं न रोग जरा गहै, तबलौं जगत निजहित करो॥१४॥ यह राग आंग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये। चिर भजे विषय कषाय अब तो, त्याग निजपद वेइये॥ कहा रच्यो परपदमें न तेरो, पद यहै क्यों दुख सहै। अब 'दौल' होउ सुखी स्वपदरचि, दाव मत चूको यहै ॥१५॥

दोहा।

इक नव वसु इक वर्षको, तीज सुकल बैसाख।
करयो तत्त्वउपदेश यह, लखिबुधजनकी भाख।१।
लघुधी तथा प्रमादतैं, शब्द अर्थकी भूल।
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पावो भवकूल ॥ २ ॥

इति दौलतरामकृत छहढाला समाप्त॥

महावीराष्टक ।

(पं० गजाधर लालजी न्यायतीर्थ कृत)

जिन्होंकी प्रज्ञामें, मुकुरसम चैतन्य जड़ भी,
स्थिती नाशोत्पत्ती, युत झलकते साथ सब ही।
जगद्ज्ञाता मार्ग, प्रकटकरते सूर्यसम जो,
महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रकट वे ॥ १ ॥
जिन्होंके दो चक्षू, पलक अरु लाली रहित हो,
जनोंको दर्शाते, हृदयगत क्रोधातिलयको ।
जिन्होंकी शांतात्मा, अतिविमलमूर्ती स्फुटमहा,
महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रकट वे ॥२॥
नमंते इंद्रोंके, मुकुटमणिकी कांति धरता,
जिन्होंके पादोंका युग, ललित, संतप्त जनको ।
भवाग्नीका हर्ता, स्मरण करते ही सुजल है,
महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रकट वे ॥ ३ ॥
जिन्होंकी पूजासे, मुदितमन हो मेंढक जवै,
हुआ स्वर्गी ताही, समय गुणधारी अतिसुखी ।
लहैं जो मुक्तीके, सुख भगत तो विस्मय कहा,
महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रगट वे ॥ ४ ॥
तपे सोने ज्यों भी, रहित वपुसे, ज्ञानग्रह हैं,

अकेले नाना भी, नृपतिवर सिद्धार्थ सुत—हैं ।
न जन्मे भी श्रीमान्, भवरत नहीं अद्भुतगती,
महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रकट वे ॥ ५ ॥
जिन्होंकी वाग्गंगा, अमल नयकल्लोल धरती,
न्हवाती लोगोंको, सुविमल महा ज्ञानजलसे ।
अभी भी सेते हैं, बुधजन महाहंस जिसको,
महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रकट वे ॥६॥
त्रिलोकोका जेता, मदनभट जो दुर्जय महा,
युवावस्थामें भी, वह दलित कीना स्वबलसे ।
प्रकाशी मुक्तीके, अतिसुसुखदाता जिनविभू,
महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रकट वे ॥ ७ ॥
महामोहव्याधी, हरणकरता वैद्य सहज,
बिना इच्छा बंधू, प्रथितजग कल्याण करता ।
सहारा भव्योंको सकल जगमें उत्तम गुणी,
महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रकट वे ॥ ८ ॥

संस्कृत वीराष्टक रच्यो, भागचन्द रुचिवान ।
तस भाषा अनुवाद यह, पढ़ि पावै निर्वान ॥१॥

समाप्त

रामकुमार भुवालका द्वारा हनुमान प्रेस कलकत्तामें मुद्रित